वर्ष ८, अंक १

श्रीकृष्णाय नमः

आश्विन पूर्णिमा १९९०

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
ब्र० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

जगद्गुरु श्रीकृष्ण

GITA PRESS, GORAKHPUR.

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आश्विन पूर्णिमा, सितम्बर १९३३ | अंक १ पूर्ण संख्या ८५

वेदोपदेश

अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दधार।
सहस्रदा शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः॥

स्वर्ग का और सकल भुवनों का धारण करने वाला, प्रजाओं का पालन करने वाला, यजन करने वाला यह अग्नि अपने से मिली हुई सहस्रों किरणों को चारों ओर फैलाता हुवा रात्रि में सूर्य के प्रकाश को स्वयं धारण करता है।

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन्।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि॥

अन्तरिक्ष में स्थित और जलकी बिन्दुओं वाला, रसों को चाहने वाले सूर्य के तेज से प्रकाशित हुवा वेग जब मेघ की ओर जाता है तब सूर्य स्वच्छ तेज से तीसरे लोक में प्रदीप्त होता हुवा सबके प्यारे जलों की वर्षा करता है।

अभिगोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्रयुत्सु ॥

मेघों में बलात्कार से प्रवेश करता हुआ शत्रुओं पर दया न करने वाला और पराक्रमी, सौ यज्ञों वाला वा बहुत क्रोध वाला और किसी से चलायमान न होने वाला शत्रु सेनाओं का तिरस्कार करने वाला और जिसके ऊपर कोई प्रहार न कर सके ऐसा इन्द्र संग्रामों में हमारी सेनाओं की रक्षा करे।

इन्द्रस्य विष्णो वरुणास्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्द्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥

अभीष्ट फल दाता इन्द्र का, राजा वरुण का, आदित्य और मरुतों का उग्रबल हमारा हो। उदार चित्त और लोकों को सींचने वाले विजयी देवताओं का जय शब्द उठता है।

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्यायथासथ ॥

हे हमारे योधाओ ! चढाई करके जाओ और जीतो। इन्द्र तुम्हें सुखदे। तुम्हारे भुजदण्ड उग्र हों जिससे कि तुम किसीसे तिरस्कार न पाओ॥

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी

कथा सूरदास मदन मोहन की।

सूरदास मदनमोहन सूरध्वज ब्राह्मण किसी सखी का अवतार परम भक्त माध्व संप्रदाय में थे। यद्यपि इनका मुख्य नाम सूरदास था परन्तु श्रीमदनमोहन जी महाराज में इनका अत्यन्त प्रेम और स्नेह था, इसलिये इनका नाम सूरदास मदन मोहन विख्यात हुआ। इनकी बाहर भीतर की आंखें कमल के सदृश प्रफुल्लित थीं और गान विद्या और काव्य रचना में इनको बहुत अभ्यास था। प्रिया प्रियतम के जो गोप्य चरित्र हैं, उनके रसों के यह अधिकारी हुए और नव रसों में शृंगार रस जो मुख्य और पहिला है, उसको इन्होंने अपनी कविता में अच्छा वर्णन किया। इनकी कविता मुख से निकलते ही तुरत विख्यात हो जाती थी और एक दिन में चौरासी कोस पहुंच

जाती थी, मानों वह काव्य ही उड़ने को पंख लगा लेती थी।

यह बादशाह की ओर से पूर्व के जिलों में सन्दीले के सूबेदार थे। एक बार बाजार में इन्होंने दिव्य और साफ खाँड देखा। मन में विचार आया कि मदनमोहन महाराज के भोगपुओं के योग्य है। खरीद करने के निमित्त आज्ञा दी। सेवकों ने कहा कि इसके दाम से बीसगुणाखर्च किराये का पड़ेगा और वृन्दावन तक मिश्री से भी अधिक महंगी पहुंचेगी। सूरदास जी ने कहा कि खर्च पर ध्यान न देना चाहिये भगवत्प्रीति पर दृष्टि चाहिये। गाड़ियों में भरवा कर खांड भेजी गई। संयोगवश गाड़ियां वृन्दावन में रात को पहुंची। मन्दिर के पुजारियों ने भंडार में खाँड रख वाली कि प्रभात को भोग लगावेंगे। भगवत् अपने भक्त की भेजी हुई सौगात की बाट देख रहे थे, भूख के कारण प्रभात तक धैर्य न धर सके, गोसाईं जी को स्वप्न में आज्ञा दी कि इसी घड़ी मालपुये बनें। मालपुये बने और भोग लगाया गया, तब भगवत् ने संतुष्ट होकर शयन किया। धन्य है, यह भक्तवत्सलता कि जिसकी माया कोटान कोट ब्रह्मांड को एक क्षण में ग्रास कर लेती है, वह ईश्वर भक्त के वश होकर क्षुधा और संतुष्टता प्रकट करता है।

सूरदास जी ने एक विष्णुपद के तुक में वर्णन किया कि भगवद्भक्तों की जूती का रक्षक, यह पदवी मुझको मिले। किसी साधु ने परीक्षा के लिये सूरदास जी से कहा कि हम मदन मोहन जी महाराज के दर्शन कर आवें, हमारे जूते की रक्षा करते रहो। सूरदास जी ने बहुत प्रसन्न हो कर साधु की जूती को अपने हाथ में उठा लिया और कहा कि आज तक तो इस कार्य में बातों ही का जमा खर्च था, परन्तु मेरी वांछा पूरी हुई कि यह सेवा मुझे मिली, गोसांई जी ने कई बार बुलाया, नहीं गये, विनय लिख भेजी कि साधु की चरण सेवा करलूँ, पीछे दर्शन करने आऊंगा। गोसाँई जी और साधु इस विश्वास पर अत्यन्त प्रसन्न हुए।

सन्दीले के सूबे से तेरह लाख रुपये तहसील होकर आये, सब साधु सेवा में खर्च कर दिये; हिसाब का और बादशाह का कुछ डर न किया। जब बादशाह के सेवक रुपया लेने को आये, तो सन्दूक कंकरों से भर कर सब सन्दूकों में एक २ पुरजा लिख कर डाल दिया, उसमें यह लिखा था, 'तेरह लाख संदीले उपजे सब साधुन मिलि गटके। सूरदास मदन मोहन आधी रात सटके॥ और हर एक सन्दूक पर अपनी मोहर करके आधी रात को भाग गये। जब सन्दूक खोले गये, तो कंकर निकले। बादशाह ने पुरजों को पढ़ कर कहा कि गटक तो अच्छा हुआ परन्तु सटक अच्छा न हुआ अर्थात् खाना तो ठीक हुआ परन्तु जाना ठीक न हुआ। यह कह कर बादशाह ने प्रसन्न होकर एक फर्मान कसूर के माँफ होने का और हाजिर होने के निमित्त लिख भेजा। सूरदास जी ने उजर लिख भेजा कि अब आमिली और सूबेदारी से श्रीवृन्दावन की गलियों में झाड़ू देना सहस्र गुणा अच्छा है।

टोडरमल दीवान ने बादशाह से विनय किया कि यदि इसी प्रकार लोग सरकार का माल खर्च करके भाग जावेंगे, तो इन्तजाम जाता रहेगा। यह कह कर उनकी गिरफ्तारी का हुक्म जारी कराके उनको कैदखाने में भिजवा दिया। सूरदास जी ने एक दोहा लिख कर बादशाह के पास भेजा, उसमें बादशाह की श्लाघा, कैद का दुःख और अपना हाल थोड़े में लिखा था, बादशाह ने उसी घड़ी उनको छोड़ दिया। कैदखाने में से छूट कर

सूरदास जी वृन्दावन में आकर श्रीब्रजकिशोर किशोरी के ध्यान में मग्न रहने लगे:–

कुं–भगवत का जो दास है, न हो अन्य का दास।
सूबेदारी छोड़ के, हुए सूर हरिदास॥
हुए सूर हरिदास, ध्यान हरि का नित राखा।
सब स्वादों को छोड़, प्रेमरस अद्भुत चाखा॥
भोला! छोड़ी वन्य, नेह तज दारा सुत का।
भोगों से मुख मोड़, ध्यान करता भगवत का॥

कथा अग्रदास की।

स्वामी अग्रदास जी चेले कृष्णदास पय आहारी की तीसरी पीढ़ी में रामानन्द जी के परम भक्त थे। उनकी संप्रदाय माधुर्य उपासक विख्यात है। यह ऐसे भजनानन्दी थे कि एक पल या एक क्षण भी भजन और चिन्तवन बिना नहीं बीतता था। जैसी भगवद्भक्तों की रीति होती है, प्रभात से उठ कर आचार और कृपा से श्रीसीतापति अवध बिहारी की सेवा और स्मरण में रहते और अपने वचनामृत की वर्षा से सब को ऐसा आनन्द देते कि जिस प्रकार घटा की वृष्टि सब पर बराबर होती है। सिद्ध ऐसे थे कि नाभादास ग्रन्थकार जो जन्म के अन्धे थे, उनके नवीन नेत्र कर दिये, और समुद्र से डूबता हुआ जहाज बचाया। ये दोनों बातें ग्रन्थ के आरंभ में लिखी गयी हैं। जानकी महारानी के साक्षात् दर्शन हुए। वैराग्य इतना था कि संसारी सब कार बार त्याग कर आमेर के निकट गलता जी में भजन में लवलीन रहते थे। फुलवाड़ी को अपने स्वामी का बिहार स्थान समझ कर आप अपने हाथों से झाड़ू देते और उज्ज्वल किया करते थे यद्यपि सैकड़ों बागवान् और नाभा ऐसे २ चेले सब सेवा में थे, परन्तु किसी को अपनी सेवा में साझी नहीं करते थे।

एक दिन झाड़ू देकर पत्ते और कूड़ा टोकरी में लेकर बाहर डालने को निकले थे कि आमेर के अधिपति महाराजा मानसिंह दर्शन के निमित्त आये। स्वामी जी भीड़ देख कर फुलवाड़ी में न गये बाहर एक वट के वृक्ष के नीचे बैठ रहे। जब विलम्ब हुआ, तो नाभा जी गये और दण्डवत् करके प्रेम में भरे हुए खड़े रहे, कुछ कह न सके। राजा ने बहुत देर तक बाट देखी, फिर उठ कर जहां स्वामी जी बैठे थे, वहाँ जाकर दर्शन और दण्डवत् किया फिर विदा हुआ। स्वामी जी के भीतर न जाने का यह अभिप्राय था कि इस वृक्ष के नीचे छोटे बड़े सब को बराबर दर्शन होंगे और भीतर बड़े लोगों को दर्शन होंगे और छोटे लोगों को दर्शन न होंगे और यह भी अभिप्राय था कि भीतर बैठने से राजा बहुत देर तक रहेगा, वृक्ष के नीचे धूलि इत्यादि में देर तक न रहेगा, चला जावेगा। धनाढ्य लोगों का जितना थोड़ा संग हो, उतना ही अच्छा है।

दोहा–रहे सभी से दूर जो, भोला सोई शूर।
सब से दूर न रह सके, रहे धनी से दूर॥

कथा स्वामी कील्हदास की।

स्वामी कील्ह जी चेले कृष्णदास पय आहारी के माधुर्य और शृंगार उपासक परम भागवत स्वामी अग्रदास जी के गुरु भाई थे। दिन रात श्रीरघुनन्दन स्वामी के चरण कमलों के ध्यान में मग्न रहते थे। इनका निर्मल यश अब तक सारे संसार में विख्यात है। भगवद्भजन में शूरवीर थे और सांख्य योग के मुख्य तात्पर्य के जानने वाले थे। भीष्मपितामह के सदृश मृत्यु को अपनी इच्छा के अधीन किये हुए थे। ऐसी सिद्धता होने पर भी प्रेम और नम्रता का यह वृत्तान्त था कि सब की

आप प्रणाम किया करते थे।

इनके पिता सुमेरु देव गुजरात में सूबेदार थे। जब उनका परलोक हुआ, तो विमान पर चढ़ कर परम धाम को चले। उस घड़ी कीलहदास जी मथुरा में राजा मानसिंह के पास बैठे थे, विमान को देख कर उठे और दण्डवत् करके कहा कि अच्छा हुआ, अच्छा हुआ! राजा ने पूछा कि किस से बात कर रहे हो? कीलहदास जी ने पहिले छुपाया, जब राजा ने आग्रह किया, तो सब वृत्तान्त कह दिया। राजा ने हरकारा भेज कर दिन घड़ी सब निर्णय किया, तो ठीक उतरा, तब राजा ने दृढ़ विश्वास किया और दण्डवत् किया।

एक बार कीलहदास जी भगवत् पूजन कर रहे थे। पिटारी में फूल लेने को हाथ डाला, तो सर्प ने अंगुली में काट खाया, कीलह जी ने जाना कि सर्प तृप्त नहीं हुआ, उससे कहा कि फिर काट। इस प्रकार तीन बार कटवाया, तनक भी विष न चढ़ा। जब परमधाम जाने की इच्छा हुई तो भगवद्भक्तों का समाज किया और दर्शन और सत्संग करने के पीछे दशवाँ द्वार अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र तोड़ कर देह त्याग किया। यह वृत्तान्त सुन कर योगी जन भी चकित हुए और सब भक्तों को विश्वास हुआ।

कथा गोपाल भट्ट की।

व्यङ्कट भट्ट के पुत्र श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के चेले गोपाल भट्ट ब्राह्मण परम भागवत् थे। माधुर्य और शृंगार उपासना में ऐसे पगे हुए थे कि वृन्दावन में उस अमृत रस का स्वाद उन्हीं को प्राप्त हुआ। इनके प्रभाव से सहस्त्रों को भगवत् की प्राप्ति हुई। भागवत् धर्म के प्रवृत्त करने वाले और भगवद्भक्ति के रूप थे, सिवाय गुण के किसी का अवगुण इनकी दृष्टि नहीं आया। धन संपत्ति सब छोड़ कर वृन्दावन में वास करके सदा रस-राम और व्रजकिशोर महाराज की परम शोभा में मग्न रहते थे। भगवत् भक्तभावन महाराज उनकी भक्ति और सेवा के वश में ऐसे थे कि अत्यन्त प्रसन्न होकर अपना स्वरूप शालग्रामी मूर्ति प्रकट किया अर्थात् एक बार सेवा के समय उनको शालग्राम जी में यह चिन्ता हुई कि जिस प्रकार भगवत् का शृंगार ध्यान में किया जाता है, वह उसी प्रकार हुआ करे, तो अच्छा है। भगवत् ने अपने भक्त का मनोरथ पूर्ण करने के लिये वैशाख सुदी पूर्णमासी को अपनी परम शोभायमान मूर्ति को शालग्राम स्वरूप से प्रकट किया। भट्ट जी ने मन्दिर में विराजमान करके राधारमणनाम विख्यात किया, जो कि वृन्दावन में प्रसिद्ध और विख्यात है और आधे भाग शालग्राम का चिन्ह चरण के नीचे और आधे का कटि पर विराजमान है। इस कृपा के पीछे भट्ट जी शृंगार, सेवा और राग भोग इत्यादि में लगे और संसार के लिये सुगति का हेतु हुए।

कथा केशव भट्ट की।

केशव भट्ट कश्मीरी ब्राह्मण ऐसे परम भक्त थे कि लोगों को दुःख और पापों से छुड़ा कर भगवत् के संमुख कर दिया। भट्ट जी की महिमा संसार में विख्यात है कि भक्ति के कुल्हाड़े से दूसरे धर्मों के वृक्षों को काट कर भगवच्चरित्रों को जगत् में विख्यात किया। निम्बार्क संप्रदाय वालों ने भट्ट जी को अपने गुरु परम्परा में लिखा है परन्तु उनकी कथा से ऐसा जान पड़ता है कि उनको श्रीकृष्ण चैतन्य से भगवद्भक्ति का उपदेश हुआ। उस समय महाप्रभु की सात वर्ष की

अवस्था थी, इस कारण से उनके चेले न हुए, निम्बार्क संम्प्रदाय वालों के सेवक हुए। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु माध्व संप्रदाय में थे।

जिस प्रकार भगवद्भक्ति प्राप्त हुई, उसका वृत्तान्त यह है कि यह भट्ट जी बड़े पण्डित थे, हजारों पंडितों को शास्त्रार्थ में निरुत्तर कर चुके थे। जब दिग्विजय करते हुए सैकड़ों पण्डित और शिष्यों सहित नदिया शान्तिपुर में पहुंचे, तो वहां के पण्डित लोग भय को प्राप्त हुए। महा प्रभुजी ने विचार किया कि इस पण्डित को अपनी पण्डिताई का बड़ा गर्व है, इसका गर्व दूर करना चाहिये, ऐसा विचार कर भट्ट जी के पास आये और मधुर वचन से बोले कि आपकी विद्या और आपका यश सारे संसार में विख्यात है, कुछ मुझ को सुना कर कृतार्थ कीजिये। भट्ट जी ने उत्तर दिया कि अभी लड़के हो और विद्या भी प्राप्त नहीं हुई है, ऐसे निर्भय वचन बोलना ढिठाई है परन्तु हम तुम्हारे मधुर वचन से बहुत प्रसन्न हुए हैं, जो कुछ कहो, सो सुनावें। महाप्रभु जी ने कहा कि गंगाजी का स्वरूप वर्णन करो। भट्ट जी ने अपने बनाये हुए कई श्लोक पढ़े। महाप्रभु जी ने तुरन्त उपस्थित कर लिये और पढ़ के सुना दिये और कहा कि अर्थ और गुण दोष जो उनमें हैं, वर्णन करो। भट्ट जी ने कहा कि मेरे काव्य में दोष कभी हो सकता है। महाप्रभु जी ने कहा कि यह नहीं हो सकता, यदि आज्ञा करो, तो मैं गुण, दोष अर्थ वर्णन करूं, यह कह कर कहना आरंभ किया और ऐसे २ अर्थ किये कि बनाने के समय भट्ट जी को भी नहीं सूझे थे और जो २ दोष और गुण थे, वे भी ऐसे विस्तार से प्रकट किये कि भट्ट जी उत्तर न दे सके। महाप्रभु जी अपने स्थान को चले आये।

भट्ट जी ने लज्जित होकर रात को सरस्वती का ध्यान किया, सरस्वती जी आई तब भट्ट जी ने विनय किया कि सारे संसार से विजय कराके एक लड़के से हरा दिया, हम से ऐसा कौनसा अपराध हुआ था? सरस्वती जी ने उत्तर दिया कि महाप्रभु जी भगवत् अवतार और मेरे स्वामी हैं, मेरी क्या सामार्थ्य है कि उनके सन्मुख बोल सकूं और तुम्हारे भाग्य धन्य हैं कि तुमको उनके दर्शन हुए। इतना कह कर सरस्वती तो अन्तर्धान हुई और भट्ट जी महाप्रभु जी की सेवा में आये, हाथ जोड़ कर विनय करने लगे कि कुछ शिक्षा दीजिये। महाप्रभु जी ने कहा कि भगवद्भक्ति अंगीकार करो और आगे को किसी पंडित के साथ बात मत करना। भट्ट जी ने मान लिया, उस वचन को धारण किया और जो पंडित लोग साथ थे, सब को विदा करके भगवद्भक्त हो गये।

पश्चात् अपने घर कश्मीर में चले गये, कुछ दिन वहां रहे। मथुरा जी के वृत्तान्त पहुंचे कि मुसलमानों ने विश्रान्त घाट पर ऐसा यंत्र लगा दिया है कि जो कोई उस पर जाता है, आप से आप उसकी सुन्नत हो जाती है और मुसलमान बलात्कार से उसको अपने दीन में मिला लेते हैं, भट्ट जी यह समाचार सुनते ही कश्मीर से चले और अपने एक हजार चेलों सहित मथुरा जी में पहुंचे, पहले विश्रान्त घाट पर गये, दुष्टों ने जैसे और लोगों से दुष्टता करते थे, उसी प्रकार भट्ट जी से कहा कि नग्न होकर हम को दिखाओ। भट्ट जी ने उनको खूब मारा और यन्त्र तोड़ कर यमुना जी में फेंक दिया। सब मुसलमान सूबा के पास जाकर फरयादी हुए। उसने उनकी सहायता के लिये अपनी फौज भेजी, भट्ट जी उस फौजसे ऐसे लड़े कि बहुतेरों को वध किया, कितनों को यमुना में डाल दिया और कुछ भाग गये।

इस युद्ध का वृत्तान्त एक कवि ने विस्तार से लिखा है, उससे जानने में आता है कि भट्ट जी ने सुदर्शन चक्र का आराधन करके ऐसी आग बरसाई कि सब दुष्ट अशरण हो गये और काजी और सूबा आदि सब आकर चरणों में पड़े। उसके पीछे यह चरित्र किया कि सब मुसलमानों के शरीरों पर हिन्दुओं के चिन्ह दिखायी देने लगे। यह लोग यह प्रभाव देख कर अधिक अधीन हुए और सब ने हाथ बाँध कर सेवकाई करनी अंगीकार करके रक्षा चाही। भट्ट जी ने व्रज के सब हिन्दुओं को मुसलमानों से निर्भय कर दिया और भगवद्भक्ति की प्रवृत्ति करी।

कथा बनवारी जी की।

बनवारी जी भगवद्भक्ति के रंग में रंगीन, माधुर्य और शृंगार रसके रसिक और भजन की मूर्ति थे, मधुर बोलने में, काव्य के समझने में, व्यंग्य और व्याजोक्ति में बड़े बुद्धिमान और सारासार के विचार में परमहंसों से भी अधिक थे। सदाचारी, संतोषी, सब पर दया करने वाले अनेकों विद्याओं के ज्ञाता और भक्ति के साधनों में सावधान थे। उनके दर्शनों से ही पवित्र होते थे और जिससे बातचीत हुई, तो उसके पवित्र और भक्त होजाने में कुछ संदेह ही न था। व्रजभूषण महाराज सुखधाम के चरित्र के आलाप में अत्यन्त चतुर थे।

कथा यशवन्त जी की!

यशवन्त जी जाति के राजपूत राठौर भगवद्भक्ति में समाधान करने वाले और भक्ति के सब धर्मों के आचरण करने वाले थे। भक्तों से ऐसी सच्ची प्रीति थी कि क्लेश निकट नहीं आता था। सब उदार मनसे हाथ बांधे इनकी सेवा में एक पाँव से खड़े रहते थे और अनुक्षण यह चाहा करते थे कि किसी सेवा के निमित्त आज्ञा करें। श्रीवृन्दावन में निरन्तर वास करके श्रीराधावल्लभ लाल के चरित्र और बिहारीलाल में मन लगा कर दिन रात भगवत् के शृंगार और माधुर्य के चिन्तन में रहते थे। सब धर्मों का सार रूप नवधा भक्ति के धनी थे, सत्यवादी थे और भगवत् प्रेम में प्रायः बेसुधि होकर डूब जाते थे।

कथा कल्याणदास की।

भगवत् की भक्ति, भलाई, सब गुणों का सूक्ष्म समझना ये सब संसार में कल्याणदास जी के भाग में आये। नवलकिशोर व्रजचन्द्र महाराज के प्रेम में मग्न रहते थे और जैसे नदी का प्रवाह निरन्तर चलता है, इसी प्रकार अनन्य, दृढ मन की वृत्ति अनुक्षण माधुर्य और शृंगार के चिन्तन में रहती थी। वाणी ऐसी मधुर थी कि सुनने वाले का मन बरबस मोहित होकर आधीन हो जाता था। परोपकारी, दयावान और विवेकी थे। नाभा जी के वचन से ऐसा मालूम होता है कि सनातन के भाई रूप के चेले थे।

कथा कर्णहरिदेव विख्यात कन्हरदास की

कर्ण हरिदेव विख्यात कन्हरदास जी ओड़ियाँ के रहने वाले भगवद्भक्त, आत्माराम, भविष्य के जानने वाले, श्रीकृष्ण भक्ति के आरोपण करने वाले, ब्राह्मणकुल में सूर्य के सदृश, सहिष्णु दृढ़ स्वभाव वाले और सब गुणों की खानि थे। भगवद्भक्तों को अपना सर्वस्व जानकर प्रेम से सेवा और भक्ति करते थे, अन्न वस्त्र आदि यथा योग्य निर्मल मन और विश्वास से देते थे, सोभूराम जी से इनको

अनुभव हुआ था, शृंगार और माधुर्य के स्वरूप थे और सब जीवों के ऊपर समान कृपा दृष्टि रखते थे।

कथा लोकनाथ की।

लोकनाथ जी को भगवत् में इतना प्रेम और स्नेह था कि जितना पार्षदों को है। महाप्रभु के चेले थे, प्रिया प्रियतम के चिन्तवन और चरित्रों में अनुक्षण ऐसे मग्न रहते थे कि यदि एक क्षण भी भगवत् स्वरूप का चिन्तवन न करते, तो विकल हो जाते। भगवत् का गान और कीर्तन प्राण से अधिक प्यारा था। जो कोई भगवत् के रास चरित्र का भजन और कीर्तन करता, तो उस को अपना मित्र जानते थे। एक बार एक मनुष्य को भगवच्चरित्रों का कीर्तन करते हुए देख कर, उसको रसिक और प्रेमी जान कर बेसुधि होकर उसके चरणों में पड़ कर भक्ति और प्रेम की सबको शिक्षा दी।

कथा मानदास की।

मानदास जी परमभक्त, परोपकारी, दयावान और सुशील थे। श्रीरघुनन्दन महाराज के अनन्यभक्त थे, उनके गोप्य चरित्र भाषा में इस सुघड़ाई और कविताई से वर्णन किये हैं कि सब को प्रिय हैं और दोनों लोकों में लाभ देने वाले हैं, यद्यपि नवरसों का अपने ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन किया है परन्तु शृंगार और माधुर्य तो ऐसा लिखा है कि जिसके पढ़ने सुनने से भगवत्स्वरूप में अवश्य मन लग जाता है। श्रीकृष्ण चरित्र के समान राम चरित्र में मानदास जी ने शृंगार वर्णन किया है।

कथा कृष्णदास जी की।

कृष्णदास जी परमभक्त और पंडित थे। श्रीगोविन्द चन्द्र महाराज के रूप माधुर्य और शृंगार में मग्न होकर उनके रस में रात दिन मस्त रहते थे। भगवत्सेवा करते हुए सेवा स्वरूप हो जाते थे। भगवद्भक्तों को भांति २ के भोजन और प्रसाद दिया करते थे, अपनी, संप्रदाय वाले से बड़ी प्रीति से मिला करते, भगवच्चरित्रों के कीर्तन, स्वरूप के चिन्तवन और अनुभव में ऐसे मग्न हो जाते कि उसका वर्णन नहीं हो सक्ता।

आध्यात्मिक जीवन

(रचियता बी० एल० सराफ)

अधम शरीर को अनेक सुख देत रहे।
मेवा मिष्टान्न खवाय धोय धोय राखत है॥
देह के हू पाछे करे पाप तू अनेक बार।
जग से छल द्रव्य होत मजा तू उड़ावत है॥
ईश्वर से द्रोह कर कुगामी तू होत जात।
करवे विगार जगत बीच झूठ भाषत है॥
अपनी जो न चीज ताके मोह में भुलानो फिरे!
जावे नहिं रूप संग सभी त्याग भाजत है॥

श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण जी।

(ले० श्री यमुना प्रसाद जी श्रीवास्तव)

आह्लादिनी, सन्धिनी, ज्ञान, इच्छा, क्रिया, आदि भगवान की अनेक शक्तियां हैं, उनमें से आह्लादिनी सर्व श्रेष्ठ और प्रधान है। यही अन्तरंग भूता श्री राधा हैं इन्हीं को शास्त्रों में राधिका, सान्धवी, रमा लाड़ली, वृषभानुजा, पूर्ण प्रकृति सत्या, वृन्दाराध्या, आदि नामों से सम्बोधन किया है।

श्रीमती राधा बरसाने के राजा वृषभानु की कन्या थी। उनकी माता का नाम 'कीरति' अथवा 'कलवती' था। वे परम सुन्दरी थीं।

'गौर बदन तन सुन्दरताई।
अङ्ग अङ्ग छवि बरनि न जाई'॥

विश्व-विमोहन श्रीकृष्ण जी गोकुल में रहते, थे वृत्तमण्डल में विहार करते थे। रूप गुण और पराक्रम में वे अद्वितीय थे।

'रूपराशि सुख रूप कन्हाई।
प्रेमराशि जन के सुखदाई॥'

उनके अनेक नाम हैं उनमें से कुञ्जविहारी, मोहनलाल, कन्हाई, घनश्याम, मुरलीधर, श्याम, गोपाल, गिरधारी, माधव, मुरारी दामोदर, हरि वासुदेव आदि मुख्य हैं।

'इनके नाम अमित जग माहीं।
तदपि कहो मैं कछु तुम पाहीं॥'

श्रीमती राधा श्रीकृष्ण जी के ईश्वरत्व पर मोहित हुई थीं। उन्होंने श्रीकृष्ण जी को ईश्वर का अवतार माना था। और अपना सर्वस्व उनके ऊपर न्योछावर कर दिया था। वे दिन और रात उन्हीं के ध्यान में मग्न रहती थीं।

'सोवत जागत सुपन बस, रस रिस चैन कुचैन।
सुरति श्याम घन की सुरति बिसरेहू बिसरैन॥'

श्रीकृष्ण जी भी श्रीमती राधा की छवि पर मोहित थे। उन्होंने श्रीमती राधा को अपने हृदय में बसा लिया था और स्वयं जाकर उनके हृदय में समा गये थे।

'हरि रीझे राधा छवि देखी।
भये विवश लखि रूप विशेखी॥
बसत श्याम श्यामा के मांही।
श्यामा बसत श्याम तन मांही॥'

श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण जी पुरुष और प्रकृति के अवतार थे।

'माया ब्रह्म कृष्ण अरु राधा।
प्रेम प्रीति होऊ रूप अगाधा॥
छवि शृंगार मनहुं इक जोरी।
करत विहार श्याम अरु गोरी॥
बसे श्याम श्यामा उर मांही।
देखे बिनु भावत क्षण नांही॥

श्रीकृष्ण जी ने स्वयं श्रीमती राधा से कहा था

'प्रकृति पुरुष एकै हम दोऊ।
तुम मोते कछु भिन्न न होऊ॥
जल थल जहां तहां तनु धारौं।
तुम तजि कहूं रहत नहिं न्यारो॥
देह धरे को यही विचारा।
मानिय कुल कुटुम्ब व्योहारा॥
लोक लाज गृह छांडि न दीजे।
मात पिता गुरु जन डर कीजे॥

श्रीकृष्ण जी के प्रति राधिका जी का प्रेम पवित्र और शुद्ध था। ब्रजवासियों ने व्यर्थ ही उन्हें बदनाम करदिया था। श्रीमती राधिका जी ने इसकी चर्चा करते हुये भगवान श्रीकृष्ण जी से कहा था:-

'झूठे ही ब्रज में लगो, मोहि कलंक गुपाल।
सपने हू कबहु दियें, लगे न तुम नन्दलाल॥'

श्रीकृष्ण जी ने भी उनका समर्थन करके प्रीति की व्याख्या इस प्रकार की थी:-

'एक जो प्रीति परस्पर होई।
स्वारथ हेतु करत सब कोई॥
जैसे पशु पशु को जाने।
आपस में अति हित कर माने॥
सो यह प्रीति कनिष्ठ कहावे।
जासों सब संसार बंधावे॥
दूजी प्रीति एक दिशि जोई।
करत धर्म आधिकारी सोई॥
जैसे मात पिता चित धरि के।
रक्षत हैं सुत के हित करके॥
सो यह मध्यम प्रीति कहावत।
उत्तम गति यातें जन पावत॥
उत्तम प्रीति जानिये सोई।
अनायास उपजत उर जोई॥
दुहुं दिशि हठ करि प्रीति बढ़ावे।
नहिं निमित्त तामें कछु आवे॥
अन्तर नेक परै नहिं कोई।
प्रीति पुनीत जानिये सोई॥

और कहा था:-

नहिं अन्तर नेकु जामधि, प्रीति उत्तम सो कही।
तुम करी मों सो सोई, मैं ऋणी तुम्हरी सही॥
कबहुं जो उपकार तुम प्रति, कोटि कोटिन जग भरी।
कबहुं होहुं न उऋण तुमतें हे प्रिया! ब्रज सुन्दरी॥
करै ऐसी कौन जैसी, तुमन जो करनी करी।
लोक वेद मर्याद ममहित, तोरि तृण सम परि हरी॥
करहु मन में दूर अब यह, दोष मैं तुमतें कियो।
प्रिया! अन्तर परम सुखमें, विरह दुख तुमको दियो॥

श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण जी में प्रगाढ़ स्नेह था। उनकी प्रीति पुरातन थी। दोनों ही एक थे।

'रसिक शिरोमणि नागर दोऊ।
प्रीति पुरातन जान न कोऊ॥
सुन्दर श्याम सुन्दरी राधा।
खेलत दोउ छवि सिन्धु अगाधा॥

श्रीमती राधा की एक प्यारी सखी ने भी कहा था:-

'एक प्राण हैं देह तुम्हारे, तुम बिन रह न सकत हरि न्यारे।

एक को दूसरे का वियोग असह्य था। श्रीमती राधा की सखी ने श्रीकृष्ण जी की वेदना वर्णन करते हुये कहा था:-

राधा विरह विकल गिरधारी।
कहुं माल कहुं मुरली डारी॥
कहुं मुकुट कहुं पीत पिछोरी।
नहिं कछु सुरत भई मति भोरी॥
कबहुं मूंदि दृग ध्यान लगावें।
कबहुं प्यारी के गुण गावें॥
छांडि देह सुख गेह बिसारी।
गिरि बन वास करत गिरधारी॥
कबहुं लोटत कुञ्जन मांही।
कबहुं बैठि द्रुमन की छांही॥
ठाढि टेकि कबहुं द्रुम डारी।
तकत प्रिया पथ पलक बिसारी॥

श्रीमती राधा भी श्रीकृष्ण जी के वियोग में दुखी होती थी और रोदन कर विलाप करती थी:-

'कहत विकल नयनन जल डारी।
मों को त्याग गये बनवारी॥
टेरत जहं तहं घोष कुमारी।
अहो! प्राणपति कुंजविहारी॥
कहां दुरे पिय हमतें भजके।

जात प्राण तुम बिनु तनु तजिके ॥
तुम बिन हमको सुनहु कन्हाई।
क्षण क्षण कल्प समान बिहाई ॥
कस तुम निठुर होत हो प्यारे।
बिरह जरावत गात हमारे ॥
क्षमा करहु प्रभु चूक हमारी।
मिलहु कृपा कर देन मुरारी ॥

श्रीकृष्ण जी की उदासीनता देखकर श्रीमती राधा की एक सखी ने कहा:-

राधा! तुम्हें मान करना भी नहीं आता। श्रीमती राधिका जी तो श्रीकृष्ण जी के रंग में रंगी थीं। उनके रोम २ में श्रीकृष्ण जी रम रहे थे उन्होंने श्रीकृष्ण जी को अपने नेत्रों में बसा लिया था।

'सांवरे लाल को सांवरो रूप,
मैं नयनन में कजरा कर राखो ॥
× × ×
कजरारी आंखियान में बसो रहे दिन रात।'
प्रीयतम प्यारो ऐ सखी यातें सांवल गात ॥

भला! वह कबतक मान किये बैठी रहती उन्होंने मन में यह कहा:-

'कहा भयो जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उड़ी जांड किनहूं, तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ ॥'

उत्तर दिया:-

'राति योस होंसे रहे, मान न टिकु ठहराय।
जे तो औगुन देखिये, गुणै हाथ परि जाय ॥'

और मान भंग कर दिया। मान भंग होते ही श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण जी की चार आंखें हुईं। आंखों के इस मधुर मिलन में दोनों के दिल धड़क उठे। श्रीमती राधा का प्रेम स्रोत खुल गया और श्रीकृष्ण जी हतचेतन होकर भूमिपर गिरपड़े।

'कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल।
कहुं मुरली कहुं पीतपट कहूं मुकुट बनमाल ॥
उन्हें अपने शरीर की भी सुधि नहीं रही।
मगन श्याम श्यामा रस मांही।
निज स्वरूप की सुधि कछु नांही ॥'

इधर श्रीकृष्ण जी की यह दशा थी, तो उधर भी श्रीमती राधिका जी की शारीरिक और मानसिक यातनाएँ भी कुछ कम न थीं।

'कटी छटी छीली छिदी, बरदी तऊ निकेत।
बंधी जरी सूखी रिती, श्याम अधर रस हेत ॥

कृष्णानुरागिणी श्रीमती राधा ही तो श्रीकृष्ण जी की मुरली थी। श्रीमती राधा जी ने स्वयं ही कहा था।

'मैं मुरलीधर की मुरली लई, मेरी लई मुरलीधर माला।
मैं मुरलीधर की मुरली भई, मुरलीधर भये मेरी माला ॥

यह श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण जी का एकाकार रूप है। इस रूप में 'भक्ति' इकदम भगवान से जा मिलती है। इससे बढ़कर तल्लीनता और क्या होसकती है। अब देखिये! दोनों किस प्रकार मिलते हैं।

'हिलत मिल पैयां परत, दोऊ लेत बलाय।
इन्हें भूलि गई गागरें, उन्हें भूली गई गाय ॥

श्रीमती राधा, श्रीकृष्ण जी के प्रेम में सराबोर थीं। उनका हृदय श्रीकृष्ण जी से परिपूर्ण था। उनकी इन्द्रियां श्रीकृष्ण जी के रंग में रंगी थीं, और जिस विषय पर उनकी दृष्टि जाती थी। वहीं श्रीकृष्ण जी के रंग में रंग जाती थी। श्रीकृष्ण जी की यही तो विशेषता है कि चित्त के भीतर रहने पर भी उनका प्रतिबिम्ब जगत भर में दिखाई देता है।

'मोहन मूरति श्याम की, अति अद्भुत गति जोय।
बसत सुचित अन्तर, तऊ प्रतिबिम्बित जग होय'

इस प्रकार श्रीमती राधा का सारा संसार कृष्णमय था।

कृष्ण जल, कृष्ण थल, कृष्ण बिन्दु सिन्धु।
कृष्ण मित्र, कृष्ण इष्ट, कृष्ण पुत्र बन्धु॥

भक्ति स्वरूपिणी श्रीमती राधा श्रीकृष्ण जी का नाम जपती रहती थीं और जप करते करते श्रीकृष्ण जी में इतनी तल्लीन हो जाती थीं कि वे अपने आपको बिलकुल भूल जाती थीं और स्वयं श्रीकृष्ण होकर सखियों से पूछती थीं सखी! राधा कहाँ गई।

कृष्ण कृष्ण कहते कहते, मैं ही कृष्ण होगई।
पूछत निज सखियन सों, प्यारी कहां गई॥
श्याम श्याम रटत प्यारी, आपही श्याम भई।
पूछत निज सखियन सों, प्यारी कहां गई॥
श्यामहि! श्याम! रही रटके,
पुनि होगई मुरति नन्द किशोर की।

× × ×

लाली मेरे 'लाल' की जित देखो तित 'लाल'
लाली देखन मैं गई मैं भी होगई 'लाल'॥

× × ×

जा में रस सोई हरो, यह जानत सब कोय।
गोर-स्याम दै रंग बिनु, हरो रंग नहिं होय॥

× × ×

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जानत की झांई परत, श्याम हरित दुति होय॥

यह रंग दुपट्टे रंगने का नहीं है कि जिस रंग में रंगदिया वही चढ़गया। यह तो श्रीकृष्ण जी का रंग है जिसकी विशेषता यह है कि चित्त को जितना ही अधिक इस रंग में रंगा जाय, उतना ही अधिक वह उज्ज्वल होता है।

'या अनुरागी चित्त की, गति समझे नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़े श्याम रंग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय॥'

श्रीमती राधा को अपना श्रीकृष्ण रूप देखकर आश्चर्य होता था।

'अपनो रूप 'कृष्ण' को देखी।
भई मगन रस विरह विशेखी॥
मैं नारी वे पुरुष विहारी।
किधौं पुरुष मैं ही वे नारी॥
बड़ी विरह संभ्रमता धारी।
भई विकल तन दशा बिसारी॥

श्रीकृष्ण जी भी श्रमती राधा के प्रेम में उन्मत्त हो जाते थे। उन्हें अपने रूप तक का ज्ञान न रहता था।

'मगन श्याम श्यामा रस मांही।
निज स्वरूप की सुधि कछु नांही॥

वे राधा! राधा! रटते थे।

राधा! राधा! रटलगी राधा! राधा! राध।
मम नयनन की पुतली बाढ़गो प्रेम अगाध॥

× × ×

उठते किशोरी! बैठते किशोरी।
किशोरी! हुई है सार॥
शयन में किशोरी! स्वपन में किशोरी।
किशोरी! भई है गले का हार॥'

और स्वयं 'राधा' होजाते थे। उस समय उनके संपूर्ण अंग और सारी बातें मधुर होती थीं।

'अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हासितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं, मधुराधिपते रखिलं मधुरम्॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं, वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं, मधुराधिपते रखिलं मधुरम्॥

इस प्रकार श्रीमती राधा श्रीकृष्ण जी के लिये और श्रीकृष्ण जी राधा के लिये व्याकुल रहते थे।

वास्तव में श्रीमती राधिका जी संसार के माया जाल के बन्धनों से मुक्त होकर श्रीकृष्ण जी

में लीन होगई थी। उन्होंने निष्कपट भाव से यह कह भी दिया था।

'करूं प्रीति रस रीति अति, छांदि सबन को साथ।
भले बुरे को डर नहीं, बिकू श्याम के हाथ॥

ईश्वर प्राणिधान का यह कैसा सुन्दर चित्र है! भगवद्भक्तों के लिये यही आदर्श है। ऐसी ही भक्ति करने से भगवान मिलते हैं।

'हरिचंद जहां यह रस भावत।
तहं हरि अनुभव प्रकट लखावत॥

इस पर भी यदि किसी प्रकार जगत के प्रपञ्चों में फँसने की संभावना हो तो फिर प्रतिज्ञा ही करलेना चहिये। देखिये! भक्ति स्वरूपिणी श्रीमती राधिका जी ने कितने सुन्दर शब्दों में प्रतिज्ञा की थी।

'कही राधिका अड़ भरि, श्याम! वचन दे दोय।
मैं ना भूलों खेलिबो, तुम ना भूलो मोय॥'

वाह! कैसी अच्छी प्रतिज्ञा है!

श्रीमती राधा प्रेम की प्रतिमा ही तो थी। संपूर्ण प्रकार के प्रेमों के समूह ही को 'राधा' कहते हैं। 'राधा' के द्वारा जैसे भगवान को वशीभूत किया जा सकता है वैसा अन्य उपायों द्वारा नहीं किया जा सकता। भगवान श्रीकृष्ण जी भी तो 'राधा' ही के वशीभूत हैं। बिना 'राधा' के वे रह ही नहीं सकते।

जहाँ श्रीमती राधा हैं वहीं श्रीकृष्ण जी हैं, और जहां श्रीकृष्ण जी हैं वहीं श्रीमती राधा हैं।

श्रीमती राधिका जो साक्षात् भक्ति की अवतार थीं उन्होंने निज आचरण द्वारा तथा श्रीमुख से यह कह कर:-

'मोरे सुन्दर श्याम! भक्ति को मारग सूधो।'

भगवद्-भक्तों को भक्ति का सिधा मार्ग बता दिया है।

'भक्ति' के प्रिय पाठको! आप भी उसी मार्ग को गह लीजिये और यह कामना करके।-

'देखूं तव मूरति मन मोहन! उर में सदा ललाम।'

श्रीराधा कृष्ण जी की भक्ति कीजिये। श्रीराधा-कृष्ण जी का नाम जपिये श्रीराधा-कृष्ण जी का ध्यान कीजिये, और अपना सर्वस्व श्रीराधा कृष्ण जी के अर्पण कर दीजिये जिससे श्रीराधा-कृष्ण जी रोम-रोम में समा जांय और सारा स्थान श्रीराधा-कृष्ण जी से परीपूर्ण होजावे। इसी में हमारा और आपका कल्याण है।

बस! अब बोलिये! श्रीराधा-कृष्ण जी की जय! जय!! जय!!!

हरिदासी

(कहानी)

गतांक से आगे

(ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)

उसने बहुत प्रतीक्षा की परन्तु हरिदास जी के जप व ध्यान में कोई अन्तर नहीं पड़ा वह उसी तरह भगवान के नाम में मस्त थे। लाचार उसने चलने का विचार किया परन्तु भय से उसके पांव शिथिल पड़ रहे थे अन्त में वह लोक लज्जा के कारण वह अपने घर चली आई। वह बुरी नीयत से दूसरे के कहने पर साधु के पास गई थी। अब उसे स्वयं अपनी बात को चिंता होगई। वह सोचने लगी। लोगों को मैं क्या मुँह दिखाऊंगी। यह युवक मुझसे क्या कहेगा। दूसरे धनिक जब इस बात को सुनेंगे तो मेरी हंसी उड़ावेंगे। तिरस्कार तक

करेंगे। मेरे रूप लावण्य की निन्दा करेंगे। इस अपमान से मैं जीवत कैसे रह सकूँगी। जैसे भी हो सके तैसे ही उस साधुको अपनी ओर आकर्षित करना चाहिये। इसी चिन्ता में वह दिन भर पड़ी रही। भूख प्यास निद्रा आराम उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था, उसे तो साधु को गिराने की धुनि थी हर समय उसे भगवन्नाम जप करते हुए उस साधुकी स्मृति ही बनी रही उसकी ऐसी दृढ़ता से उसका मन सदा उस रूप में ही रमण करता था उस दिन वह किसी से भी न मिली।

संध्या हुई और नित्य की भान्ति भगवान् भुवन भास्कर जाकर पश्चिम दिशा में छिप गये, वह उद्विग्न थी। रात्रि की प्रतीक्षा में उसने एक दिन अनेकों वर्षों की भान्ति बिताया था, सन्नाटा होते होते ही वह गंगा जी की ओर चल पड़ी। साधु के मुख से निसृत वह सुमधुर ध्वनि उसे दूर से ही सुनाई दी। उसे एक अनिर्वचनीय सुख का आभासमा प्रतीत हुआ। एक अज्ञात आनन्द के सागर में उसका मन हिलोरे मारने लगा। वह उस आनन्द का मतलब न समझ सकी। लगन की वह सच्ची थी। कर्तव्य परायणता का पाठ उसने पढ़ा था जिस बात को मन में ठान लेती थी। उसे पूरा करके छोड़ती। चाहे उसमें कितनी भी विपत्तियां क्यों न पड़ें ये गुण उसमें स्वाभाविक थे। कल की ही तरह वह साधु के सामने जाकर बैठ गई। आज उसने साधु से कुछ भीनहीं कहा। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया। आज मैं इसके जप के बीच में न बोलूंगी और न आज सोऊंगी ही। कभी तो इसके जप की संख्या पूरी होगी ही। जब यह जप कर लेगा तभी कहूंगी।" यह निश्चय करके साधु की ही तरह तत्परता के साथ आसन जमा कर वह भी बैठ गई। बिना इच्छा के ही उसके मन में से धीरे २।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

यह ध्वनि आपसे आप ही निकलने लगी। कभी २ वह भी साधु के साथ ही साथ अन्तिम पद को "कृष्ण कृष्ण हरे हरे" जोरों से बोल जाती। इसका उसे पता भी नहीं था। वह तो साधु की संख्या पूरी होने की प्रतीक्षा में थी, किन्तु साधु की संख्या तो द्रौपदी की साड़ी होगई थी। वह माला कब पूरी होने वाली थी। वृक्षों पर बैठे पक्षी जोरों से चह चहाने लगे। शशि का ध्यान भंग हुआ वह जोरों से साधु के स्वर में स्वर मिला कर जप कर रही थी। उसे अपनी इस अवस्था पर बड़ी लज्जा आई। चारों ओर उसने शंकित भाव से इधर उधर देखा, कि मुझे कोई इस अवस्था में देख तो नहीं रहा है। उसके मन को आन्तरिक हर्ष हुआ कि उसे किसी ने इस दशा में देखा नहीं है। वह साधु को बिना जताये ही धीरे से उठ कर चल दी।

(५)

भवापवर्गो भ्रमतो यदैव जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्संगमो यर्हितदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः॥

भगवत् प्रेरणा से यह जीव नाना योनियों में अपने शुभ शुभ कर्मों के अनुसार भ्रमता रहता है। चौरासी के चक्कर में घूमते घूमते जब इसके छुटकारे का समय आता है, तब इसे मनुष्य योनि प्राप्त होती है, उसमें भी सभी को छुटकारा नहीं मिलता है, बहुत से तो छुटकारे के समीप आकर भी फिर चक्कर में गिर पड़ते हैं। जिन पर श्रीहरि का अनुग्रह होता है, जिनकी शुभ कर्मों के करते २ कर्म वासना दग्ध हो चुकी है, उन्हें प्रभु कृपा से

साधु संगति प्राप्त होती है। सच्चे साधु की जहां संगति मिली तहां फिर चौरासी का चक्कर नहीं रहता। सच्चे साधु के समीप वासना युक्त पापी पुरुष जायगा ही नहीं, यदि किसी प्रकार चला भी जाये तो उसे भी मुक्त ही समझना चाहिए। साधु संगति ऐसी अग्नि है, कि इसे जान कर अथवा अनजाने कैसे भी छू लो अवश्य ही जला देगी। साधु संगति से परावर प्रभु के पादपद्मों में प्रीति उत्पन्न हो ही जाती है, यह ध्रुव सत्य है।

तीसरा दिन हुआ, शशि की विचार धारा अब दूसरी ही ओर प्रवाहित होने लगी। पहिले विचारों को स्वयं रोकने की उसने चेष्टा नहीं की, किन्तु वे इन विचारों के प्रबल प्रवाह में आप से आप ही बहगई। अब वह साधु के पतित करने के विचार को तो भूल गई। वह बार बार सोचने लगी। "सचमुच भगवन्नाम में इतनी मादकता है। इतनी मोहकता है, कि उसके सामने मेरा त्रलोक्य सुन्दर रूप कुछ भी नहीं है। उस नाम में इतना माधुर्य आया कैसे? नाम भी तो कोई बड़ा नहीं गिनूं उसमें तिकने अक्षर हैं। धीरे २ वह गिनने लगी।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

गिन कर उसने स्वयं ही कहा—"कुल ३२ अक्षर हैं। १६ नाम एक मंत्र में हुए। वह ५० लाख रोज जपते हैं। बापरे बाप! इतना भारी परिश्रम तब उन्हें सोने, खाने और किसी के रूप को देखने को फुरसत कहां? साधु का चेहरा कैसा चमकता रहता है, मानों रात्रि में सूर्य्य प्रकाशित हो रहा हो। सचमुच में इस नाम में बड़ी ही मधुरता है। मेरे इस रूप को धिक्कार है। हाय, मुझे अपने इस नश्वर यौवन और क्षणिक रूप का कितना गर्व है। मैंने अपनी आयु के अमूल्य दिन इन मदमाते बिगड़े दिल धनिक छोकरों को ही रिझाने में बिता दिये। मैंने भी रात्रि रात्रि भर जागरण किया, किन्तु उन महात्मा की तरह भगवन्नाम के जप के उद्देश्य से नहीं। केवल कुछ चांदी के टीकरों के लिये। उन दयालु महात्मा के पास केवल दो रात्रि ही बीती हैं, सो भी बुरी नीयत से उन्हें पतित बनाने के उद्देश्य से उनके आश्रम पर गई थी। उस नाम में कैसा जादू है, हाय मुझ व्यभिचारिणी पतिता और धर्म भ्रष्टा का कैसे उद्धार होगा। जिनकी कृपा से मुझे अपने इस पाप कर्म से पश्चात्ताप हुआ है, अब मैं उन्हीं की शरण जाऊंगी। वे ही मेरे परम गुरु हैं, उनकी ही अहेतुकी अनुकम्पा से मुझे शान्ति का पथ दीखने लगा है। ये सुन्दर २ पलंग, बहु मूल्य वस्त्राभूषण, भान्ति २ की सुखोपभोग की सामिग्री, अब मेरे लिये विष के समान हैं। मुझे अब इनसे क्या काम? मैं तो अब उसी महामंत्र का जाप करूंगी, जिससे शाश्वत शान्ति मिल सके। जिससे मैं इन सभी संसारी लोगों से अलग रह सकूं।" इसी प्रकार के विचारों में उसका वह दिन क्षण भर की तरह व्यतीत हुआ। उसे तब चेत हुआ, जब दशमी के चन्द्रदेव अपनी हंसी से उसके कमरे को थोड़ा आलोकमय बना चुके थे।

(५)

वांछा कल्पतरुभ्यश्च कृपा सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यश्च वैष्णवेभ्यो नमो नमः॥

उन सच्चे वैष्णवों की प्रसंशा हम संसारी पंक में फंसे हुए अल्पज्ञ प्राणी कर ही क्या सकते हैं। जो कि हमारी इहलौकिक और पारलौकिक इच्छाओं के लिये कल्प वृक्ष के समान हैं, जिनके चरणों में जाने पर फिर किसी प्रकार की कमी नहीं

होती। जो भारी से भारी अपकार पर भी कुपित नहीं होते जो करुणा के सागर ही हैं और अत्यंत पतित से पावन बना देते हैं, उन सच्चे वैष्णवों के पादपद्मों में हमारा प्रणाम है। उनके चरणों की हम भक्ति भाव से वन्दना करते हैं।

शशिबाला तीसरे दिन भी उसी प्रकार साधु की कुटिया की ओर चली। आज उसकी चाल में मादकता थी, वह प्रेम में पगली हुई चली जारही थी। वह कभी हंसती, कभी आप ही आप कुछ गुन गुनाने लगती कभी महामन्त्र का उच्च स्वर से गान करने लगती। कभी चलने लगती और कभी खड़ी हो जाती। उसकी सभी चेष्टाएं पागलों की सी हो गई थीं। जिस किसी प्रकार वह साधु की कुटिया पहुंच गई।

महात्मा उसी प्रकार एक आसन से बैठे हुए अपने जप में निमग्न थे। उन्हें दीन और दुनियाँका कुछ भी पता नहीं था। यह भी उनके सामने ही बैठ गई और लगी जोर जोर से महामंत्र का जप करने। उनके स्वर में स्वर मिला कर यह भी उसी लय से मन्त्र जाप करने लगी। इसे पता ही नहीं कि कब रात्रि बीत गई और कब प्रातः काल हो गया।

भगवान् भुवन भास्कर अपनी अरुण वर्ण की किरणों से दशों दिशाओं को आलोकित करने लगे। वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी अपने २ चारे की तलाश में इधर उधर उड़ने लगे। गंगा स्नानार्थी दो चार पुरुष घाट की ओर भी आरहे थे। किन्तु शशिका ध्यान इन सबकी ओर बिलकुल भी नहीं था। वह तो उन्मादिनी किन्नरों की तरह अपने सुमधुर कोकिल कूजित कमनीय कंठ से

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस मंत्र का गान कर रही थी। सहसा साधु की संख्या पूरी हुई। उसने मंत्र के अंतिम पद "कृष्ण कृष्ण हरे हरे" पर जोर देकर अपनी बड़ी माला उठाकर रखदी। वह उठकर खड़ा हुआ। सामने उसने देखा एक परमसुंदरी बाला अपने सुमधुर कंठ से यंत्र की तरह महामंत्र का जाप करही है। कमल के समान दोनो सुंदर नेत्रों से निरन्तर अश्रु प्रवाह जारी है नयन जल से उसकी साड़ी एकदम भीग गई है। वह अपने आपे में नहीं है। वे उसकी ओर करुणा पूर्ण दृष्टि से देखने लगे। उसी समय उसने बड़े जोरों से चीत्कारमारी और उठकर ज्यों ही साधु की ओर दौड़ी त्यों ही पछाड़ कर पृथ्वी पर गीरपड़ी। उसकेदोनों हाथों में साधु के चरण थे और वह कुररी की तरह हाय हाय करके करुण स्वर में रुदन कर रही थी उसकी हिचकियाँ बंध गई थी। उसके रुदन में अपार करुणा थी, पत्थर भी उसके करुण क्रंदन को सुनकर पसीज उठता।

साधु ने आश्वासन देते हुए कहा। "देवि! तुमपर प्रभु की परम कृपा है। तुम इस प्रकार अधीर क्यों होती हो।" किन्तु उसका रोना किसी प्रकार रुकता ही नहीं था। उसके चीत्कार को सुनकर इधर उधर से बहुत से आदमी वहां एकत्रित हो आये। बातकी बात में खबर गांव भरमें फैल गई। जो सुनता वही साधुकी गुफा की ओर दौड़ा आता। इस प्रकार वहां बहुत बड़ी भीड़ एकात्रित होगई। लोगों ने जब देखा कि शशिबाला अपने रूप यौवन के अभिमान को तिलांजली देकर अबोध बालिका की तरह साधु के चरणों को पकड़ कर रुदन कररही है तब उनके आश्चर्य का ठिकाना

नहीं रहा। जो साधु को पतित करने आई थी वह स्वयं उसके चरणों पर पड़ी हुई है। साधुको मोहित करने को जिसने प्रतिज्ञा की थी। वह स्वयं मोहित होकर निर्लज्ज बनी हुई है। जो रुपये पैसे को ही सब कुछ समझती थी वह सभी संसारी सुखों को ठुकराकर धूलि में लोटी हुई है उस ऐसी अबला को देख कर सभी दांतों तले उंगली दबाने लगे। कोई २ कहने लगे अवश्य ही इस साधु ने इसके ऊपर कोई जादू कर दिया है, कोई मंत्र फूक दिया है।

साधु ने सबकी बातें सुनी और सबके सामने उससे कहने लगे "देवि! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी नंदनन्दन के चरणों में प्रीति हो, कलि पावन इस तारक महामंत्र का तुम निरंतर जापकरती रहना। कलियुग में जप, तप, पूजा, पाठ आदि तो कुछ बन नहीं सकता। इसी मंत्र के प्रभाव से तुम प्रभु के पादपद्मों तक पहुंच जाओगी अच्छा तो आज से इस स्थान को मैं तुम्हारे ही लिये छोड़ता हूं, तुम यहीं रह कर जप तप करना अब मैं जाता हूं। इतना कह कर साधु वहां से चलदिया और लौटकर उस स्थान पर फिर नहीं आया।

× × × ×

ये साधु महाप्रभु चैतन्यदेव के मुख्य पार्षद श्री हरिदास जी थे। वहाँ से चल कर ये नव द्वीप में आये जब महाप्रभु संन्यास लेकर श्री जगन्नाथ पुरी में वास करने लगे तब ये भी वहीं स्थाई रूप से रहने लगे। अन्त में श्रीनीलाचल में ही श्री महाप्रभु की गोद में अपना शिर रखकर इन्होंने महाप्रभु के मुखारविन्द को देखते २ आनंद के साथ अपनी इहलौकिक लीला समाप्त की। महाप्रभु ने इनके पांच भौतिक शरीर को लेजाकर अपने हाथ से गड्ढा खोदकर समुद्र की बालू में गाड़ दिया था। आज कल उसी स्थान पर हरिदास जी की समाधि के नाम से वहाँ बड़ामारी आश्रम बना हुआ है। जिसमें बहुत से गौड़ीय वैष्णव निवास करते हैं।

हरिदास जी के स्थान परित्याग के अनंतर वह वैश्या उनकी गुफा को गुरु स्थान मानकर वहाँ रहने लगी। उसने अपना नाम हरिदासी रख-लिया था। थोड़े ही दिनों में उसके भजन का प्रभाव दूर २ तक फैलगया। बहुत से लोग उसके दर्शनों के लिये आने लगे। उस स्थान में हरिदासी जी की कोई समाधि है या नहीं। इसका तो हमें पता नहीं किन्तु उसका नाम गौड़ देश में सर्वत्र प्रसिद्ध है। वैष्णव महाभाग्यवती हरिदासी जी का नाम बड़ी ही श्रद्धा के साथ लेते हैं।

पारस में अरु संत में, संत बड़ो करि मान।
वह लोहा सोना करे, यह करै आपु समान॥

शिव

(रचयिता श्रीमती ब्रजकुमारी "प्रभाकर")

शीतल गंग फुहार उड़ें नित,
भाल ललाम में इन्दु सुहाये॥ १॥
अंग भुजंग पियत नित भंग,
उमंग अनंग के शत्रु कहाये॥ २॥
आठौं हि याम रहत सुख धाम,
सुवाम निकाम सौं काम लजाये॥ ३॥
रूप अनूप सों नाचत गण 'ब्रज',
तुंग मृदंग को संग बजाये॥ ४॥

जनरल बूथ।

(ले० श्री० डब्ल्यू० ओ० फिच, एम० ए०)

विलियम बूथ का जन्म १८२६ ई० में हुआ। वह १५ वर्ष की आयु में वेजलियन मेथोडिस्ट सम्प्रदाय में शामिल हुआ। कुछ वर्ष के बाद उसको यह अनुभव हुआ कि मैं निश्चय रूप से प्रभु का अनुयायी हो गया हूं और उसने कहा कि मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि जो कुछ विलियम बूथ का है वह सब परमात्मा का हो जाना चाहिए। इसके पश्चात् वह शीघ्र ही एक उत्साही युवकों के संघ में शामिल हो गया। यह लोग अत्यन्त गरीब लोगों के पास जाते थे और उनके चित्त को परमात्मा की तरफ आकर्षित करते थे। इनके अपने विचारों से आगे चल कर मुक्ति फौज का प्रादुर्भाव हुआ। बूथ की कार्य पद्धति पुराने मेथोडिस्ट अधिकारियों की पद्धति की अपेक्षा बहुत मौलिक थी फिर १८५१ में वह उन सुधारकों के संघ में शामिल हो गया जो मेथोडिस्ट सम्प्रदाय से प्रथक् होगए थे। इस संघ ने इसको प्रचारक नियुक्त करके स्पिल्सविक नाम के छोटे कस्बे में भेजा।

१८५१ ई० में उसने कैथेराइन ममफोर्ड से विवाह किया, यह बहुत योग्य और धर्म का प्रचार करने वाली महिला थी। इन दोनों ने यह अनुभव किया कि समस्त देश में घूमकर बाईबिल का प्रचार करना चाहिए। इन्होंने फिर अपना सम्प्रदाय परिवर्तन कर लिया था और इस सम्प्रदाय के अधिकारियों ने भी इनके इस प्रस्ताव को पसन्द नहीं किया इसलिए इन्होंने उसको भी छोड़ दिया। इन्होंने प्रचार के लिए उपदेशक नौकर रख लिए और श्रोता गण से प्राप्त हुई आमदनी से वेतन का प्रबन्ध करदिया। प्रचार कार्य इङ्गलैण्ड के दक्षिण पश्चिम भाग में अधिक किया गया।

१८६४ ई० में वह लण्डन में बस गए यहां पर विस्तृत स्थान के कारण वह अपने घूम कर प्रचार करने के उद्देश को भी पूरा कर सकते थे और उनको एक निश्चित निवास स्थान भी मिल गया। एक पादरी के बीमार पड़ने पर बूथ को उसके स्थान पर नियुक्त होने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय बूथ ने वाईट चैपेल में अत्यन्त दरिद्र और अत्यन्त दुःखी लोगों में काम किया और वही स्थान था जहां पर उसने यह अनुभव किया कि मुझे कहां काम करना चाहिए। इस घटना को उसने आगे चल कर इस तरह लिखा है।

"जब मैंने उन गरीब आदमियों के लोक समूहों को देखा जिनमें से बहुत से परमात्मा के ज्ञान से शून्य और संसारी वैभव की आशाओं से निराश थे और मैंने यह भी देखा कि वह उत्सुकता और चाव से मेरी बात सुनते हैं। खुले मैदानों से डेरे खेमों में भी वह मेरी बात सुनने को गए और बहुत बार मेरे निमंत्रण पर मसीह के चरणों में घुटने टेक कर उन्होंने प्रार्थना की उस समय मेरा चित्त पूर्ण रूप से उनकी ओर आकर्षित हो गया और मैं अपने पश्चिमी घर की तरफ चल कर फिर वापिस गया और मैंने अपनी स्त्री से कहाः–

"ओ काटे मैंने अपने भविष्य जीवन को खोज लिया है, यही वह मनुष्य हैं जिनकी मोक्ष के लिए मेरी आत्मा वर्षों से भटक रही है। मैंने अपने आपको, और तुमको इस महान् कार्य के अर्पण कर दिया है। आदमी हमारे अपने आदमी होंगे और यह अपने परमात्मा के स्थान में हमारे परमात्मा को अपनाएगें।

उसकी स्त्री उससे कम तय्यार न थी। वह

लिखती है—"इस घटना ने जो भाव मेरी आत्मा में उत्पन्न किए वह मुझे अच्छी तरह याद हैं। मैं इस कठिन परीक्षा पर विचार करने के लिए बैठ गई, उस समय शैतान ने मेरे कान में कहा 'इसका अर्थ है नवीन कार्य क्रम अर्थात् जीवन में परिवर्तन, हमारे जीवन निर्वाह का प्रश्न बड़ा गम्भीर था। अब तक हम अपना गुजारा उस पैसे से करते थे जो हमको अपने धनाढ्य श्रोता गण से मिल जाता था, परन्तु पूरब के छोर में रहने वाले दरिद्रता के पीड़ित लोगों से ऐसा करना असम्भव था, ऐसी स्थिति में मांगने का शब्द जुबान पर लाना भी हमारे लिए कठिन था।

तो भी मैंने हतोत्साह से उत्तर नहीं दिया। क्षण भर विचार करने और प्रार्थना करने के पश्चात् मैंने उत्तर दिया "अच्छा यदि आपकी आन्तरिक इच्छा है तो आपको वहाँ बैठना चाहिए और अवश्य बैठना चाहिए अपने निर्वाह के लिए हम एक बार परमात्मा पर विश्वास कर चुके हैं, और हमको फिर भी उस पर विश्वास करना चाहिए।" धन्य और बड़भागी है वह पुरुष जिसको ऐसी धर्म्मपत्नि मिली हो।

इस प्रकार इस संगठन का प्रादुर्भाव हुआ जिसने आगे चल कर 'मुक्ति फौज' का रूप धारण किया। जोन बिजली की भान्ति वह अधिकतर खुले मैदान में उपदेश करते थे। इन्होंने नवीन साधनों का भी अवलम्बन किया जैसे कारखानों और नाट्य शालाओं में व्याख्यान देना। मुक्ति फौज के काम का विशेष रूप सदैव पेनिटेन्ट की कुर्सी रहा है। इस कुर्सी पर वह आदमी बिठाए जाते हैं जो अपने पापों का इक़रार करके आगे के लिए नवीन जीवन आरम्भ करना चाहते हैं। प्रत्येक शाखा के पास गाजे बाजे होते हैं और इनके पास सेना में काम आने वाले वाद्य यंत्र होते हैं। यह उच्च स्वर से गाते हुए बाजारों में से गुजरते हैं पुरुष चमकदार लाल रंग के वस्त्रों से सजे हुए होते हैं, स्त्रियों की पोशाक कम चमकदार होती है। परन्तु कम महत्व की नहीं होती। इस ढंग से भीड़ का इनकी तरफ आकर्षित होना स्वाभाविक है, लोग इनके साथ २ होलेते हैं और व्याख्यान के स्थान तक पहुँच जाते हैं। सब ही लोग भजनों में शामिल हो जाते हैं क्योंकि सब को पुस्तकें बाँट दी जाती हैं। विलियम बूथ के समय में इङ्गलेण्ड से निरक्षरता दूर हो चुकी थी। गाने के स्वर समय के अनुसार सर्वप्रिय होते हैं यद्यपि उनके मूल शब्द धार्मिक नहीं होते हैं। व्याख्यान साधारण भाषा में दिए जाते हैं और उनका विषय सदैव पाप और नर्क से छुटकारा पाना होता है। इन कार्य पद्धतियों के कारण उन पर दोषारोपण किया जाता है कि परमात्मा की भक्ति करने में उन्होंने अनुचित साधनों का प्रयोग करके धर्म्म के महत्व को कम कर दिया है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन साधनों द्वारा वह ऐसे लोगों को आस्तिक बनाने में सफल हुए जो किसी अन्य साधन से होना असम्भव था। उनके जोशीले भजन और भड़कीली पोशाक जनता के आरम्भ होने से पूर्व इस देश में लोगों का जीवन बहुत नीरस और फीका सा था।

मुक्ति फौज के प्रारम्भिक प्रचार में जनता ने बड़ा विरोध किया। न्यायाधीशों ने शान्ति भंग करने के अभियोग में कार्यकर्ताओं को जुर्माने और कैद का दण्ड दिया और जनता ने उनकी सभाओं को भंग करने के लिये विरोधी दल का संगठन किया। १८९० से यह विरोध बहुत कम सुनने में आया बादशाह एडवर्ड सातवें ने इनके

कार्य से सहानुभूति प्रगट की और अपने सिंहासन रूढ होने के समय जनरल बूथ को निमन्त्रण दिया।

संस्थापक ने १९१२ में जनरल के पद को त्याग कर अपने पुत्र बेमवेल बूथ को अपने स्थान पर नियुक्त किया। प्रत्येक जनरल पदारूढ़ होते समय अपने पदाधिकारी को स्वयं निर्वाचित करता था परन्तु यह इस भान्ति किया जाता था कि वह नाम लिख कर कागज के लिफाफे में बन्द करके उस पर मोहर लगा कर रख देता था। आगे चल कर यह नियम प्रजासत्तात्मक चुनाव के ढंग में परिवर्तित हो गया। इनके काम का क्षेत्र बहुत बढ़ गया। इनका काम न केवल समस्त संसार में ही फैल गया वरन इन्होंने असहाय और गरीब लोगों के लिए बैंक खोले, सदावत जारी किए, विद्यालय और हस्पताल बनवाए, गरीबों के लिए मकान बनवाए और सामाजिक सुधार के लिए क्लब खोले। भारत के समाचार पत्रों के पाठक इस बात से परिचित हैं कि भारतवर्ष की चोरी करने वाली जातियों के सुधार का काम अधिकतर मुक्ति फौज के हाथ में है परन्तु इन सब कामों के करने का उपदेश लोगों की आध्यात्मिक उन्नति करना ही है। जब यह काम होने आरम्भ हुए तो जनरल बूथ ने लिखा था "इस अस्थाई दुःख के निवारण करने में सहायता करने में मेरा अभिप्राय यह है कि जो स्त्री और पुरुष मसीह के पास पहुंचने में अपनी दुःखी अवस्था के कारण कठिनाई और निराशा अनुभव करते हैं उसको आसान कर दिया जावे।"

कहते हैं कि विलियम बूथ बड़े भारी उपदेशक थे और इनमें आपार सहनशीलता और शान्ति थी। वह क्रूर से क्रूर मनुष्य पर भी कभी नाराज नहीं होते थे। इस सम्बन्ध में एक कहावत प्रचलित है कि बूथ एक लुहार को ईसाई धर्म्म का उपदेश सुनाया करते थे। वह नित्य उसकी दुकान पर जाकर बड़े प्रेम से उसको समझाते थे परन्तु वह पलटे में उनको सदैव गालियां सुनाया करता। वह यहां तक कहता कि तू बड़ा दुष्ट है जो रोज मेरा समय खराब करने के लिए यहां आ बैठता है परन्तु यह उसकी बातों का ख़याल न करके नित्य उसके पास जाते रहते। एक दिन यह अपने मनमें विचार करने लगे कि मैं निष्काम भाव से इसके परं कल्याण के लिए इसको प्रभु का सन्देश सुनाता हूं और फिर भी यह मेरी बात नहीं सुनता इससे मालूम होता है कि मेरा अन्तःकरण मैला है इसलिए मुझे प्रायश्चित्त करना चाहिये। यह विचार करके वह लुहार के पास गए और शरीर से अपने कपड़े उतार कर उस लुहार को एक चाबुक पेश करके बोले "भाई मैंने तुमको कई बार प्रभुका सन्देश सुनाया परन्तु मेरे अपवित्र अन्तःकरण के कारण वह सन्देश आपके पवित्र हृदय तक नहीं पहुंचा सका इसलिए आप अपने हाथ से इस पापी की पीठ पर कोड़े लगाओ (ईसाइयों में यह रिवाज है कि शैतान के प्रभाव को कम करने के लिए अपने शरीर को कोड़ा आदि से पीड़ित किया करते हैं।) ताकि इसका पाप नष्ट हो। इतना सुनते ही वह क्रूर मनुष्य उनके चरणों में लोट गया और उनका अनुयायी बन गया।

———

वैकुण्ठ या साकेत

(ले० श्री महावीर प्रसाद, बजरंग बली 'श्रीवास्तव')

श्रीरामोपासक सज्जनों को विदित होगा कि सम्वत् १९८७ के फाल्गुण मास के 'कल्याण' में बांध गुफा 'प्रयाग' निवासी श्रीजयराम दासजी दीन-रामायणी का 'वैकुण्ठ या साकेत' शीर्षक एक लेख छपा है। उसमें इस आधार पर कि, गोस्वामी तुलसीदास जी कृत रामचरित मानस में साकेत शब्द नहीं आया, यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि नित्य विभूति में प्रभु श्रीराम का साकेत न होकर वैकुण्ठ ही है पर उक्त रामायणी जी का यह लेख बिलकुल ही विचार शून्य, मन्मुख तथा अबोध बालकों का सा है। सिद्धान्त तथा रहस्य के समझने वाले चतुःसम्प्रदाय के सभी वैकुण्ठ गोलोक-साकेत सभी भगवद्धामों का अस्तित्व नित्य विभूति में मानते हैं। एवं शंख चक्र गदा पद्मधारी चतुर्भुज विष्णु रूप का मुख्य स्थान 'वैकुण्ठ, मुरलीधर द्विभुज श्रीकृष्ण रूप का मुख्य स्थान गोलोक, तथा धनुषधर श्रीराम रूप का मुख्य स्थान 'साकेत' नित्य विभूति में है, यह बात भी आर्ष ग्रन्थों से सिद्ध है और सभी वैष्णव निःसन्देह स्वीकार करते हैं। प्रमाण के लिये ब्रह्म वैवर्त्त पुराण के कृष्ण जन्म खंड अध्याय ४३ में प्रभु के श्रीमुख वचन से ही यह विभाग स्पष्ट है। यथा–

ममाप्येवं द्विधा रूपं द्विभुजं च चतुर्भुजम्
चतुर्भुजोऽहं वैकुण्ठे पद्मया पार्षदैः सह ॥
गोलोके द्विभुजोऽहं च गोपीभिः सह राधया।
द्विविधं वै वदन्त्येवं द्वौप्रधानौ तु तन्मते ॥
ब्रह्मवैवर्त्त पु० कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ४३

अर्थ–विष्णु भगवान् शिवजी से कहते हैं 'मेरे भी दो रूप हैं द्विभुज और चतुर्भुज। वैकुण्ठ में पद्मया अर्थात् लक्ष्मी तथा पार्षदों के सहित मैं चतुर्भुज रूप हूं। और गोलोक में राधा तथा गोपियों के सहित द्विभुज (कृष्ण) रूप हूं। इस प्रकार दो प्रकार से (मेरे रूप को) जो कथन करते हैं उनके मत में दोनों ही प्रधान हैं तात्पर्य्य यह है कि दोनों ही रूप भेद से एक प्रभु के ही नित्य धाम हैं स्वरूपतः उनमें कोई भेद नहीं है।

और भीः–

वैकुण्ठे कमलाकान्तो रूप भेदाच्चतुर्भुजः।
गोलोके गोकुले राधाकान्तोऽयंद्विभुजः स्वयम् ॥
ब्रह्म वैवर्त्त कृष्ण जन्म खण्ड अध्याय ६

अर्थ–वैकुण्ठ में यही कृष्ण रूप भेद से चतुर्भुज कमलाकान्त हैं गोलोक में गोकुल में स्वयं यह द्विभुज कृष्ण राधा कान्त हैं।

इसी प्रकार श्रीराम धाम 'साकेत' या 'अयोध्या' के सम्बन्ध में भीः–

तत्रायोध्या पुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः।
राम रूपेण रमते सीतया परया सह ॥
ईश्वर्य्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान्।
इन्दीवर समः श्यामः कोटि सूर्य्य प्रकाशकः ॥
वामांके जानकी देवी किशोरी कनकोज्वला।
कैवल्यरूपिणी नित्या नित्यानंदैक विग्रहा ॥
सर्व शक्तिमयीरम्या शक्तीनां शक्तिदायिनी।
जननी सर्व भूतानां योगिनामपि मोहिनी ॥
पूर्णरूपेण साकेते नित्यं लीला रसोत्सुका।
मया रामेण रमते क्षण विच्छेदकाक्षमा ॥
साकेतकपुरद्वार सरयू कलिकारिणी।

कोटि गंधर्व कन्याभिसालीभिर्भाति भामिनी ॥

अर्थ–तहां (त्रिपाद विभूति) में परम रम्य श्री अयोध्या पुरी है जहां श्रीमन्नारायण हरि, राम रूप से सदा शक्ति 'सीता' के सहित रमण करते हैं। तहां ईश्वर्य्या (सीता जी) के समेत वह देवेश परम पुरुष नील कमलवत श्याम रंग कोटि सूर्य्य के प्रकाशक, आसीन हैं। वामांग में सुवर्ण के समान उज्वल गौरांगी केवल्य रूपिणी नित्यानन्द की साक्षात् विग्रह सर्व शक्तिमयी परम सुन्दरी शक्तियों को भी शक्ति देने वाली, सर्वभूतों की जननी, योगियों को भी मोहित करने वाली, श्रीजानकी देवी पूर्ण रूप से 'साकेत' में नित्य लीलारस में उत्साह रखने वाली मुझ राम के साथ रमण करती हैं। और क्षण भर के लिये भी मेरा वियोग नहीं सह सक्ती। साकेत पुर के द्वार पर केलि कारिणी सरयू कोटि गंधर्व कन्या तथा अली गणों के समेत शोभायमान हैं। इस प्रकार श्रीराम रूप से प्रभु का मुख्य धाम नित्य विभूती में ही है यह आर्ष ग्रंथों में स्पष्ट है। हां इतना अवश्य है कि आज कल साकेत और गोलोक की भावना करने वाले राम और कृष्ण के उपासकों में प्रायः लोगों में अनन्यता की ओट में भगवान् के चतुर्भुज विष्णु रूप तथा 'वैकुण्ठ' की सर्वथा उपेक्षा व अवहेलना कर डालने की चाल चलगई है। पर यह बहुत बड़ी भूल है। कारण कि माधुर्य्य प्रधान गोलोक और साकेत का ऐश्वर्य प्रधान वैकुंठ धाम से घनिष्ठ सम्बन्ध है। विस्तार भय से वह प्रसंग यहाँ पर नहीं उठाया जाता। यहाँ तक वैष्णवों का सार्वजनिक प्रसिद्ध सम्मत सूचित कर के अब उक्त रामायणी जी के वैकुण्ठ या साकेत शीर्षक लेख की युक्तियों पर विचार किया जाता है।

उक्त लेख में उसी सम्वत् के कार्तिक मास के कल्याण में छपे हुये, राय बहादुर अवध वासी लाला श्रीसीता राम जी बी० ए० लिखित 'साकेत' शीर्षक लेख की ओर संकेत करके रामायणी जी लिखते हैं, 'साकेत' शब्द की बात, जिसका आरोपण करके प्रभु के परमधाम में द्वैत पैदा किया गया है उसका तो ग्रन्थ कार श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी ने ही राम चरित मानस के सातों काण्डों में कहीं नाम भी नहीं लिया है। रामायण ही क्यों ? श्रीतुलसी चरित किसी भी ग्रन्थ में 'साकेत' शब्द का उल्लेख तक नहीं हुआ है। इसका कारण यही है कि श्रीगोस्वामी जी के ग्रन्थ किसी एक संप्रदाय के पोषक तथा पक्षपाती न हो कर उनके संकल्पानुसार 'नाना पुराण निगमागम सम्मतम्' के ही प्रतिपादनार्थ रचित हैं ' राम बड़े हैं या कृष्ण बड़े हैं इन झगड़ों से बचने के लिये गोस्वामी जी ने 'साकेत' गोलोक आदि शब्दों को छुआ तक नहीं है।

अब रामायणी जी के इस कथन पर विचार किया जाता है:–

१. रामायणी जी का यह विचार कि राय बहादुर अवध वासी लाला श्रीसीताराम जी बी. ए. लिखित 'साकेत' शीर्षक लेख में, पर धाम में द्वैत पैदा करने के उद्देश्य से 'साकेत' शब्द का आरोपण किया गया है, उनकी निज की कल्पना मात्र है। 'साकेत' शीर्षक लेख से पर धाम में द्वैत पैदा करना लेखक का उद्देश्य कभी नहीं सिद्ध होता। किन्तु रामायणांक परिशिष्टांक में आपने 'श्रीसुतीक्ष्ण की प्रेमा भक्ति' शीर्षक लेख में रामायणी जी ने श्रीराम रूप को अवधि बद्ध (अनित्य) सूचित किया था, और यह बात निःसन्देह श्रीरामोपासकों को खटकने वाली थी। उस अनर्थ का स्पष्टी करण करते हुये वशिष्ठ संहिता का प्रमाण, तथा प्रसिद्ध सन्त

कबीर जी व प्रसिद्ध कवि कालिदास के वचनों की भी साक्षी देते हुये नित्य धाम 'साकेत' में धनुष धर द्विभुज श्रीराम पद की नित्यता का प्रतिपादन ही उक्त 'साकेत' शीर्षक लेख में किया गया है। सो वास्तव में उचित ही था।

'श्रीसुतीक्ष्ण की प्रेमा भक्ति' शीर्षक लेख में श्रीराम रूप को अवधि बद्ध (अनित्य) सूचित करते हुये प्रमाण में वाल्मीकीय रामायण का एक निम्नलिखित श्लोक भी रामायणी जी ने दिया है।

दश वर्ष सहस्राणि दश वर्ष शतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्म लोकं प्रयास्यति॥

पर इस प्रमाण से श्रीराम रूप का अवधि बद्ध होना तो कहीं नहीं पाया जाता। किन्तु, 'ग्यारह हजार वर्ष पृथ्वी पर राज्य करके श्रीराम जी ब्रह्मलोक (साकेत) को पधारेंगे' इतना ही उक्त श्लोक का बहुत ही स्पष्ट अर्थ है। ब्रह्मलोक से यहां पर तात्पर्य्य त्रिपाद विभूति से है। जिसमें भाविकों के दृष्ट कोण के अनुसार वैकुण्ठ साकेत दोनों का ही समावेश है। 'नित्य धाम 'अयोध्या' या 'साकेत' में प्रभु नित्य ही युगल किशोर श्रीसीता राम रूप से परिकरों के सहित विहार करते हैं। यह प्रथम ही प्रमाण पूर्वक लिखा गया है।

२. साधारण बुद्धि के उपासकों में बुद्धि भेद पैदा कर देने की पर्य्याप्त सामग्री के रूप में रामायणी जी यह भी बड़े जोरदार शब्दों में सूचित करते हैं कि श्रीराम चरित मानस तथा गोसांई तुलसीदास जी के अन्य किसी ग्रन्थ में 'साकेत' का शब्द तक नहीं आया। पर यह युक्ति रामायणी जी की बहुत ही हास्यप्रद अबोध बालकों की सी है। 'अयोध्या' का ही दूसरा नाम साकेत है यह बात उक्त अवधवासी लाला श्रीसीता राम जी के 'साकेत' शीर्षक लेख में भी स्पष्ट कर दी गई है 'अवध' शब्द भी अयोध्या का ही पर्य्याय है। सो श्रीराम चरित मानस तथा गोस्वामी तुलसीदास जी रचित सभी ग्रंथों में 'अवध' या 'अयोध्या' सर्वत्र स्पष्ट ही है। इस बात के लिये अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। तब जो बात 'साकेत' शब्द के आने में है वही बात अयोध्या या अवध शब्द के आने में है। अतएव श्रीराम चरित मानस तथा गोस्वामी जी कृत अन्य ग्रन्थों में 'साकेत' शब्द न आने की बात कह कर उपासकों में बुद्धि भेद पैदा करने की रामायणी जी की युक्ति भी बिलकुल व्यर्थ है।

३. 'साकेत' शब्द न आने का कारण रामायणी जी यह अनुमान करते हैं कि गोसाईं जी के ग्रन्थ किसी एक संप्रदाय के पोषक तथा पक्षपाती न होकर उनके संकल्पानुसार 'नानापुराण निगमागम सम्मत' के ही प्रतिपादनार्थ रचित हैं। इसके उत्तर में पहली बात तो यही है कि यदि 'साकेत' शब्द के आने से ही गोस्वामी जी के ग्रंथों के 'किसी एक सम्प्रदाय के पोषक और पक्षपाती' हो जाने की आशंका थी तो वही आशंका 'अयोध्या' या 'अवध' शब्दों के प्रयोग में भी हो सकती है क्योंकि ये शब्द 'साकेत' के ही पर्य्याय हैं। अतएव रामायणी जी का उक्त अनुमान भी बिलकुल व्यर्थ है। फिर दूसरी बात सज्जनों के विचार करने की यह है कि जब सनातन हिन्दु धर्म के सभी संप्रदाय वेद पुराणादि से ही निकले हैं तो वे ही वेद पुराणादि सभी संप्रदायों के पोषक हैं और सब को उन्हीं का आश्रय है। श्रीराम चरित मानस भी उन सब वेद पुराणादि से सम्मत् होने से उनके समान ही सभी संप्रदायों का पोषक है तब वह अपने प्रति पाद्य भगवान् स्वयं श्रीराम जी के उपासकों का ही पोषक और पक्षपाती न हो, यह कैसे सम्भव

है ? अतएव 'श्रीराम चरित मानस का आश्रय लेकर श्रीरामोपासकों के इष्ट धाम साकेत' का अभाव सिद्ध करने की चेष्टा, उपासकों को उद्वेग पहुंचा कर कलह उत्पन्न करने की चेष्टा मात्र है।

४. रामायणी जी लिखते हैं, 'राम बड़े हैं या कृष्ण बड़े हैं, इन झगड़ों से बचने के लिये गोसाईं जी ने साकेत-गोलोक आदि शब्दों को छूआ तक नहीं है, इसके उत्तर में पहली बात तो यह है कि उक्त 'वैकुण्ठ या साकेत' शीर्षक लेख के दूसरे पृष्ठ, में 'प्रभु का नित्य धाम नित्य विभूति में साकेत न होकर वैकुण्ठ ही है, इस प्रकार लिख कर जब आप ने नित्य विभूति में नित्य धाम 'साकेत' का अभाव ही सिद्ध कर देने का प्रयत्न किया है, तो फिर 'राम बड़े हैं या कृष्ण बड़े हैं, इन झगड़ों से बचने के लिये गोस्वामी जी ने साकेत शब्द नहीं दिया, यह कहने का आपको अवसर ही कहां रहा ? क्योंकि ऐसा कहने से तो श्रीमान के शब्दों से ही सिद्ध हो जाता है कि गोस्वामी जी वैष्णवसिद्धांत के अनुसार नित्य विभूति में साकेत-गोलोक, वैकुण्ठ, सभी भगवद्धामों का होना निःसन्देह स्वीकार करते हैं। केवल किसी विशेष कारण से उन्होंने 'साकेत' शब्द का प्रयोग अपने ग्रंथों में नहीं किया। अतएव आपके इस लेख से आप के कथन में ही पूर्वापर विरोध पड़ता है कौन सी बात ठीक मानी जाय ?

दूसरी बात यह कि आर्ष ग्रन्थों में प्रसिद्ध साकेत और गोलोक का नाम आजाने मात्र से ही 'राम बड़े हैं, या कृष्ण बड़े हैं इस प्रकार के झगड़े उपस्थित हो जायेंगे, यह रामायणी जी की अपनी ही कल्पना है। पूज्यपाद गोस्वामी जी पर इस प्रकार की तुच्छ शंका का आरोपण करना बहुत बड़ी भूल है। कारण कि गोलोक साकेत वैकुण्ठ का भिन्न २ वर्णन आर्ष ग्रन्थों में राम और कृष्ण में छोटाई बड़ाई कह कर दो परमात्मा स्थापित करने के उद्देश से नहीं आया। किन्तु भाव तथा रस भेद से एक प्रभु के ही सब धाम हैं जिनमें वह एक ही प्रभु राम-कृष्ण-और विष्णु भिन्न २ तीन रूप से विहार करते हैं। लीला विभूति में ही अयोध्या, वृन्दावन, बद्रीनारायण, द्वारिका, जगन्नाथ पुरी आदि अनेक भगवद्धाम हैं। पर एक प्रभु के अनेक धाम होने से उनके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसी प्रकार नित्य विभूति में भी एक प्रभु के ही रूप भाव तथा इस भेद से वैकुण्ठ गोलोक और साकेत धामों का वर्णन आया है।

आगे 'वैकुण्ठ या साकेत' शीर्षक लेख में उक्त रामायणी जी का कथन है:-

'यदि गोसाईं जी अपने प्रतिपाद्य भगवान् श्रीराम को अखिल ब्रह्माँड नायक पर वासुदेव वैकुण्ठ नाथ या व्यापक ब्रह्म अथवा श्री श्रीराधिका नाथ से अन्य पृथक् कोई साकेत नाथ मानते होते, तो जहां २ श्रुति प्रति पाद्य शब्द 'वैकुण्ठ' आया है वहां वहाँ क्या 'साकेत' नहीं रख देते ? यथा-

अस कहि योग अगिनि तनु जारा।
राम कृपा वैकुण्ठ सिधारा॥

की जगह-

अस कहि योग अगिनि तनु जारा।
राम कृपा साकेत सिधारा॥

लिख देने में क्या आपत्ति थी ? तात्पर्य श्रीशरभंग जी 'अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बाण धरि राम' का ध्यान मांग कर वैकुण्ठ नहीं गये वरं साकेत को ही गये यही उल्लेख मिलता। परन्तु ऐसा कदापि नहीं पाया जाता। स्पष्ट वैकुण्ठ जाना सिद्ध है।

पुनः—गयउ गरुड़ बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुवीर।

की जगहः—

गयउ गरुड़ साकेत तब, हृदय राखि रघुवीर।

यही लिखना था अर्थात् गरुड़ जी श्रीरघुवीर को हृदय में धारण करके उनके धाम बैकुण्ठ नहीं गये, साकेत को ही गये हैं। परन्तु ऐसा कदापि नहीं है। उनका भी बैकुण्ठ ही जाना स्पष्ट लिखा है। बल्कि जिस चौपाई का प्रमाण देकर लाला जी 'साकेत' सिद्ध करना चाहते हैं, उसमें भी साकेत न लिख करके 'बैकुण्ठ शब्द ही दिया गया है। अर्थात् 'यद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना' पाया जाता है, न कि 'यद्यपि सब साकेत बखाना।' यहाँ तो अवश्य ही 'साकेत' का प्रयोग होना चाहिये था क्योंकि' अवध सरिस प्रिय मोहिंन सोऊ' से स्पष्ट है कि अवध शब्द इस लीला धाम का ही सूचक है क्योंकि 'कपिन्ह देखावत नगर मनोहर' कपियों को अंगुलि-निर्देश करके दिखला रहे हैं कि यह जो अवध मेरी (जन्म भूमि) पुरी है सो मुझे नित्य धाम उस बैकुण्ठ से भी प्रिय है जिस बैकुण्ठ की बड़ाई सभी करते हैं, जिसका महत्व वेद पुराणों में विदित है। एवं जिसे संसार जानता है। इससे स्पष्ट है कि श्रीमुख वाक्य से भी प्रभु का नित्य धाम नित्य विभूति में साकेत न होकर बैकुण्ठ ही है तथा वही बैकुंण्ठ वेद पुराणों में विदित है जिन वेद पुराणादि से सम्मत राम चरित मानस की रचना का गोस्वामी जी का संकल्प है।'

अपूर्ण

मनुष्य जीवन का उद्देश्य

(ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी)

इस असार संसार में अथाह पयोधि में असंख्यों जीव अपनी २ स्थिति में स्थित हुए कोई सुखसे कोई दुःख से बिलबिला रहे हैं। जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज चार प्रकार के जीव विधाता के भेजे हुये अपने २ कर्मानुसार अपनी २ योनि में अपने को सौभाग्यवान् समझ रहे हैं। चौरासी लाख योनियों में एक से एक उत्तम योनि होती गई। इस महाचित्र के चित्रकार ने तरासी लाख निनानवे हजार नौसो निनानवें चित्र पट तयार किये परन्तु उस के इन में से एक भी पसन्द न आया। अन्त में अपने चित्र भवन के सारे चित्रों का पुनर्निरीक्षण करके अपनी बुद्धि एवं मन को पूर्ण योगस्थ करके यह अन्तिम चित्र (मनुष्य शरीर) बनाकर अपना हस्तलाघव दिखलाया, जिससे उसको पूर्ण सन्तोष हुवा। उसने इसमें सम्पूर्ण रंग बड़ी विचित्रता से भरे हैं। इस चित्र में उसने किसी प्रकार की त्रुटि नहीं छोड़ी। इस चित्र की चारु चमत्कारिता को देखकर अपने को कृतकृत्य मानने लगा और आनन्द के उदधि में मग्न होगया।

जिस विचित्र कर्म ग्रन्थि से उसने जीवों को जन्म मरण के चक्कर में डाला उस के दो फल हैं। १ भोग, २ अपवर्ग। भोग साधारण सम्पूर्ण जीवों का स्वभाव है, अपवर्ग विशेष मनुष्य शरीर का फल है। प्रायः सब जीवों का स्वभाव सुख, आनन्द का अनुगामी है। लौकिक पादर्थ अनित्य, अस्थिर स्थूल और जीव के निकटतम हैं। इसीलिये जीव की हठात् प्रवृत्ति इन्हीं में होती है। अलौकिक अध्यात्म

पदार्थ नित्य, स्थिर, सूक्ष्म और दुरतम है। चौरासी लाख योनियों में मनुष्य शरीर ही में उस नित्य, विभु, अपवर्ग रूप फल की प्राप्ति संभव है। यद्यपि इस शरीर में भी जीव की प्रवृत्ति बहिर्मुख ही विशेष रहती है तथापि यह कर्मयोनि है, इसमें कर्म द्वारा अपवर्ग प्राप्त किया जा सकता है। अन्य योनि भोग योनि ही हैं। उनमें कर्म के अभाव से अपवर्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती, यही इस शरीर की सर्वोत्कृष्टता है। यही इसका परमोद्देश्य है। इस के सिवाय विषय प्रवृत्ति ही इस की अधोगति है। जिस प्राणी ने इस अमूल्य रत्न को पाकर भगवत् साक्षात्कार कर लिया वही कृतकृत्य है और जिसने यह अमूल्य हीरा पाकर भी विषय भोग में ही आयु खोदी उसका मनुष्य शरीर धारण करना भी शूकर कूकर आदि योनियों के समान है। इस शरीर की प्राप्ति के समान संसार में कीसी भी पदार्थ को प्राप्ति नहीं। शास्त्रों में इसी की प्राप्ति को दुर्लभ बतलाया है। किसी शुभ कर्म के फल स्वरूप यदि यह प्राप्त हो भी गया तो इसका सदुपयोग होना भी कठिन ही है। यथा:-

'दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः॥'

ये तीन बात बड़ी दुर्लभ्य हैं, देवताओं के अनुग्रह से ही प्राप्य हैं १ मनुष्यपन, २ मुमुक्षुपन और महापुरुष (सद्गुरु) का आश्रय। प्रथम तो मनुष्य शरीर ही नहीं मिलता यदि मिल भी गया तो मोक्ष की इच्छा नहीं होती यदि किसी प्रकार शुभ कर्मों के संसर्ग से मुमुक्षुता भी होगई तो सद्गुरु का मिलना महाकठिन है। इस शरीर की दुर्लभता सभी शास्त्रों में वर्णन की है। रामायण में भगवान् रामचन्द्र जी पुरवासियों को शिक्षा देते हैं:-

बड़े भाग्य मानुष तनु पावा, सुर दुर्लभ सद्ग्रंथन गावा।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पाइ न जेहिं परलोक संवारा॥
सो परत्र दुख पावइं, सिर धुनि २ पछताय।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय॥
एहि तनु कर फल विषय न भाई, स्वर्ग स्वल्प अंतहु दुखदाई।
नर तनु पाय विषय मन देहीं, पलटि सुधा ते शठ विष लेहीं॥

भगवान ने भी इसकी दुर्लभता कही है:-

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहु संभवान्ते,
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-,
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

बहुत जन्मों के अनन्तर इस दुर्लभ इष्ट साधक अनित्य मनुष्य शरीर को पाकर धीर पुरुष को मृत्यु के मुख में पड़ने से पहले २ मोक्ष के लिये पूर्ण यतन करने चाहियें, विषय तो सभी देहों में मिलते रहे हैं। इसी प्रकर एक अनुभवी महात्मा का वचन है:-

मति हीन विवेक बिना नर जो सजि साज मतंग जो ईंधन ढोवो।
कंचन भाजन धूरि भरि नर मूढ सुधारस से पग धोवो॥
बेहित काग उड़ावन कारण डारि मणि मन मूरख रोवो।
ऐसी ही देह दुर्लभ्य बिना रस पाण भाजन अकारथ खोवो॥

एक मनुष्य के ऊपर किसी राजा ने अनुग्रह करके उसको एक बहुत सुन्दर सामान से सजा हुआ हाथी दिया। वह मनुष्य मूर्ख लकड़ हारा था उसने उस हाथी से लकड़ी ही ढोई। उस हाथी के मूल्य की कदर नहीं थी। इसी प्रकार एक मनुष्य को सुवर्ण का भांडा मिले उसने अज्ञानता से उस में धूर भर २ के ठोंई ऐस ही एक को अमृत मिला उसने अमृत से पैर ही धोये। एवमेव एक मनुष्य का खेत समुद्र के किनारे था उस खेत में वह पक्षियों को उड़ाता था। दैव वश से समुद्र में एक झाल आई और उस झाल में लाल ही लाल किनारे आ लगे। वह किसान उनको उठा कर अपने मंच

पर चढकर कुछ दूरी पर समुद्र में एक पेड़ पर बैठे हुये निष्प्रयोजन कागों के उड़ाने के लिये सब लालों को समुद्र में फेंक दिया। एक ही लाल उसके पास रहा था कि इतने में उसकी स्त्री भोजन ले आई। वह भोजन करने लग गया उसके छोटे बच्चे ने उसका उठा लिया और खेलने लगा। जब वह स्त्री शहर में से जोहरी की दुकान के सामने से अपने घर जा रही थी कि जौहरी ने उसको बुला कर वह लाल लेलिया और कहा इसका क्या लेगी। वह भोली थी उसने सेर सक्कर मांगी। जोहरी ने सेर सक्कर दे दी। दूसरे दिन जमीदार की रोटी पर थोड़ी सक्कर रख कर ले गई तो जमींदार ने लाल की बात सुन कर बहुत पश्चात्ताप किया कि हाय मैंने सैंकड़ों ऐसे ही पत्थर समुद्र में फेंक दिये अन्यथा सारी ऊमर सक्कर से रोटी खाता। उधर जोहरी ने लाल की परख की तो वह नौ करोड़ की कीमत का निकला। उसके दिलमें ख्याल हुवा कि अहो हमने नौ करोड़ के बदले, सेर सकर ही दी बड़ा अन्याय किया। उसने जमींदार को बुलाया और कहा कि जितना धन तेरे से ले जाया जाय तू गाड़ियां भर कर लेजा। बस फिर क्या था जमींदार फूट २ कर रोने लगा कि हाय मैं सैंकड़ों नौ २ करोड़ के लाल समुद्र में फैंकदिये। सज्जनो! ऐसे ही मनुष्य देह बड़ी दुर्लभ है इसको प्राप्त करके बिना भगवान की प्राप्ति के मरकर जीव रोते हैं। सो इस शरीर की दुर्लभता के कारण जीव दुःखी होते फिरते हैं। इसलिये इस शरीर धारने वालों को विचारना चाहिये कि वे अपने उद्देश्य की पूर्ति में लग रहे हैं कि नहीं। यदि नहीं तो उनको भी उस जमींदार की तरह पछता कर रोना पड़ेगा। ऐसा कौन पामर है जो संसार को मिथ्या और अनित्य जान कर उसके भोगों में फंस कर अपने जीवन को गंवा देता है। वेद भगवान् ऊंचे स्वर से आवाहन कर रहे हैं कि:-

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" हे संसारी जीवो उठो! जागो सद्गुरुओं की शरण में जाकर ज्ञान प्राप्त करो। क्योंकि "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" ज्ञान के बिना संसार रूप बन्धन से मुक्ति नहीं होसकती है। और 'एषास्य परमा संपद् एषास्य परमागतिः' यही इस जीव की सबसे बड़ी संपत्ति है यही परम गति है। इसलिये अपनी संपत्ति का अर्जन करो और परम अभीष्ट गति को प्राप्त करो। यही इस शरीर का परमोद्देश्य है। अपने उद्देश्य की पूर्ति करना ही सबका सबसे बड़ा धर्म है।

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

५१६. सन्तोष, बुराई के बदले में भलाई करना काम वासना से निवृत्ति, अनुचित लाभ से घृणा इन्द्रिय निग्रह (दम) शास्त्र बोध, आत्मिकज्ञान, सत्यता, अक्रोध यह अनुकूल धर्म (ड्यूटी) के दश लक्षण हैं॥

५१७. यदि मनुष्य गायत्री पुरश्चरण (अर्थात् गायत्री का चौबीस लाख जप) गंगा के तट पर पञ्चवटी (बड़, पीपल, नीम, आम, आंवला) के नीचे करे तो वह अवश्य शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है।

५१८. सत्त्व, रज, तम तीन गुण हैं जो जीव को किसी न किसी प्रकार से बान्ध लेते हैं। अगर आप आत्मा का अनुभव करना चाहे हैं तो

कि त्रिगुणातीत है तो आप को सत्व गुण के परे जाना पड़ेगा। सतोगुण सुनेहरी पाश है। जिस प्रकार एक कांटे से दूसरे कांटे को निकाल कर दोनों को फेंक दिया जाता है उसी प्रकार रज और तम को सतोगुण से निग्रहण करके इसको भी परित्याग कर दिया जाता है।

५१६. नाही जीवन की इच्छा करो और न मृत्यु को चलके जिस तरह दास अपने स्वामी की प्रतीक्षा करता है तुम काल की करो। ज्ञानी की यही उदासीन वृत्ति होती है।

५२०. ईश्वर ही सब का स्वामी, कर्ता, धर्ता व संहरता है। वह उच्च व नीच सर्व में निवास करता है।

५२१. जिस प्रकार पानी भरने वाला मटके में पानी को थामता है तद्वत् ईश्वर भी तिनों लोकों को धारण किये हुए है।

५२२. मैं उस परम पुरुष परमात्मा को जो सूर्य के सदृश प्रकाश स्वरूप और अज्ञान को दूर करने वाले हैं जानता हूं। केवल उसको ही जानने से आत्मा मृत्यु को पार करता है। मोक्ष का इसके अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं हैं। यजुर्वेद ३१,१८,१८१

५२३. किसने इस पृथ्वी और आकाश को बनाया? किसकी छाया मृत्यु है और किस का प्रकाश मोक्ष स्वरूप है? कौन मनुष्य तथा पशुओं पर शासन करता है? किसकी महानता को यह श्वेत बर्फ से ढका हुआ हिमालय, यह समुद्र, सूर्य चन्द्रमा और तारागण वर्णन करते हैं।

५२४. सहस्रों सिर, अक्षि और पाद वाला वह पुरुष है। वह सर्वत्र है और सब प्राणियों के हृदयों में वही निवास करता है। ऋग्वेद १०,९०,१

५२५. निश्चय करके यह विश्व ब्रह्म ही है। क्योंकि ब्रह्म से ही यह उत्पन्न होता है, उसके ही आश्रय से यह जीवित रहता है और अन्त में उसमें ही लीन हो जाता है। अतः हम सब को शान्त भाव से उसकी ही उपासना करनी चाहिये। छा० उ० ३-१४-१०

५२६. मनुष्य की चित्त वृत्तियों और उनके कारण भूत प्रेरक शक्तियों की धारा दोष गुण रूपी दो समानान्तर सरिताओं में विभक्त होकर स्वाभावतः प्रवाहित हो रही हैं। तुम्हें तमाम धारा को अपनी तमाम शक्ति और ज्ञान के बल से उसको भलाई के रास्ते पर प्रवाहित करना पड़ेगा।

५२७. केवल वह मनुष्य जिसको अपवित्र जीवन के दुष्परिणाम का यथार्थ भान है। वही शुद्धता और पूर्णता अर्थात् मोक्ष का सफलता पूर्वक प्रयत्न कर सकता है।

५२८. क्या हर्ष की बात है कि मनुष्य अपने सङ्कल्पों का बना हुआ है। मनुष्य जैसा इसलोक में विचार करता है वह परलोक में वैसा ही हो जाता है। छा० उप० ३-१४-१

५२९. हर एक मनुष्य को अपने जीवन का वह पथ ग्रहण करना चाहिये जो अति कुशलता पूर्वक उसको उसके उद्देशों की पूर्ति की ओर ले चले।

५३०. अनेक भौतिक ज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर अध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना श्रेयस्कर है। यही सब विद्याओं से श्रेष्ठतम विद्या है। यही उच्चतम आत्मिक विज्ञान है। इसको प्राप्त कर ही मनुष्य सर्वज्ञ हो सक्ता है।

५३१. दुर्गुणों का मूलोच्छेदन कर डालें सद्गुणों को उनके स्थान जमाओ, दया परोपकार, क्षमा विश्व प्रेम सन्तोष, धैर्य, शान्ति आदि का विस्तार करो। परमात्मा में आदर्श जीवन व्यतीत करो।

५३२. सांसारिक जीवन की छटा अत्यन्त नश्वर व क्षण भंगुर है। नाम और यश आकाश की स्फुर्णा मात्र हैं। कितने डाक्टर, वकील, और जज आए

और विलीन हुए। उनका आज कोई नाम तक भी नहीं लेता॥

५३३. जो अत्यन्त सूक्ष्म और सब का सारभूत है उसमें ही यह सब विश्व अपने अस्तित्व को धारण किये हुये है। श्वेतकेतु! वह सत्ता है, वह तू ही है। छा० उ० ४-८-७

५३४. वह जो उस एक को देखता है मृत्यु को प्राप्त नहीं होता है। छा० उ० ८-२६-२

५३५. जो अहं ब्रह्म करके अपने आप को जानता है वह सर्वज्ञ है। देवता भी उसकी ब्रह्म भावना स्थागित नहीं कर सकते। छा० उ० १४-१०

५३६. जो अत्यन्त विनम्र है और जो तमाम सांसारिक सन्मान को तृणवत् समझता है अर्थात् जो लोकेषणा, वित्तेषणा, और पुत्रेषणा को अतिक्रमण कर चुका है वही वास्तव में महात्मा है। वही स्तुति के योग्य है।

५३७. आप विविध धर्मों के क्षुद्र सिद्धान्तों पर क्यों झगड़ते हो। सब के धर्मों का सार निःसन्देह एक ही है। फिर आप उनके बाह्य और अनावश्यक रूपों तथा अङ्गों पर क्यों झगड़ते हो। धर्म के सार या लक्ष पर दृष्टि रखो। गिरि को ले लो और छिलके को फेंक दो। रसको रख कर असार वस्तु को फेंक दो। पूर्ण सहिष्णुता उत्पन्न करो यदि आप में निष्पक्षता और सहिष्णुता नहीं है तो आप उन्नति नहीं कर सकते। सब पन्थ तथा सब धर्मानुयाइयों को गले से लगाओ। तब ही आप को असीम सुख शान्ति व बल प्राप्त होगा।

५३८. जो सर्व सांसारिक वस्तुओं को निस्सार समझता है उनसे विष्टावत् वर्तता है वस्तुतः वह प्रज्ञावान है। ऐसा मनुष्य उपासना के योग्य है।

५३९. जिस प्रकार मकड़ी के पेट से जाला और पुनः जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियें उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार परमात्मा से तमाम प्राणी, लोक, देवता और सृष्टि के अन्तरगत जड़ चेतन जगत उत्पन्न होता है। बृ० आ० उप० द्वि० १-२०

५४०. ब्रह्म सबका मूल है और वह ज्ञानानन्द स्वरूप है। बृ० आ० उप० द्व० ९-२८

५४१. निश्चय करके निम्न लिखित तीन वस्तुएं अत्यन्त दुर्लभ हैं और भगवत कृपा से ही उपलब्ध होती हैं।

५४२. मनुष्य जन्म, मुमुक्षा और सद्गुरु की शरण परन्तु एक धर्मात्मा व पुण्यात्मा पुरुष को यह तीन वस्तुयें अवश्य प्राप्त होती हैं। स्वामी विवेकानन्द गोरख नाथ, भर्तृ, और नित्यानन्द को यह तीनों दुर्लभ वस्तुएं प्राप्त थीं।

५४३. तुम स्वयं दृश्यों के द्रष्टा तथा संङ्कल्पमय आत्मा के सङ्कल्प करने वाले नहीं हो सकते। बृ० उ० ३-९-४२

५४४. यदि आप थोड़ा भी स्वाध्याय करते हैं तो मनन और निदिध्यासन द्वारा उसको पूर्ण रूप से अपने अन्दर जज़्ब करना चाहिये। उसपर पुनः पुनः विचार और ध्यान करते रहो। वह आप के जीवन का अत्यन्त आवश्यक अंग हो जावे।

५४५. उस पुरुष के वाक्य जिसने अपनी आत्मा का साक्षत्कार कर लिया सुनने वालो के लिये सुख, शान्ति और आध्यात्मिक बल के उत्पादक होंगे। क्योंकि वह उसके सुख शान्ति और तेजमय आन्तरिक जीवन के बाह्य विकाश हैं। ऐसे पुरुष से दिशाएं आनन्द प्रेम और भक्ति से परिपूर्ण हो जाती हैं।

५४६. अत्यन्त विश्वास करने वाले मत बनो। हर एक बात पर जो पुरुष तुम से कहते हैं विश्वास न करलो। क्योंकि वे बहुधा प्रत्येक वस्तु को बढ़ा कर कहते हैं। होशयार रहो। उनपर विचार करो।

मनुष्यों की एक बड़ी संख्या स्वभाविक तथा दूषण और असत्य का व्यवहार करने वाली है।

५४७. जितना व जैसा पुरुष अपने आपको ऐसा या वैसा समझता है और जिसतरह कर्म करता है। और जैसा वह व्यवहार करता है ठीक वैसा ही अर्थात् वैसी ही वासनाओं सहित वह पुनः उत्पन्न होगा। बृ० उ० ४-४-५

५४८. यहां से मरकर वह पुनः जन्म धारण करता है। ऐत० उ० ह्रि० ५-१

५४९. तुम वह नहीं काट सकते जैसा तुमने बोया नहीं है। जैसा वृक्ष लगाओगे वैसा ही वह वृद्धि को प्राप्त होगा। मनु० ९-४०

५५०. क्रोध उस सब को नष्ट करता है जो तप, यज्ञ और दान करके प्राप्त होने योग्य है। अतः क्रोध को सर्व प्रकार से वस में करना चाहिये।

५५१. जीव अकेला ही पैदा होता है अकेला ही मरता है अकेला ही अपने नाना प्रकार के बन्धनों को काटता है। तब भी तुम स्त्रि पुत्रादिक के मोह में क्यों वशी भूत होते हो जो मिथ्या माया का पसार है उठो, जागो और होशयार हो जावो।

५५२. एक मुनाफिर नास्तिक नहीं है क्योंकि वह केवल यह कहता है कि परमात्मा अविज्ञेय है।

५५३. एक योगी सृष्टि की तमाम शक्तियों का स्वामी होता है और उन को अपनी इच्छानुकूल उपयोग में ला सकता है उसका पंच तत्वों पर पूरा अधिकार होता है।

५५४. यह जीवात्मा इन्द्रियाधिगम्य लोक में दिव्य अनुभव को प्राप्त करता है क्योंकि उसको बुरे बीज से उत्पन्न हुए कटुफल का उपभोग करना पड़ता है अतः उसके दुःख से उत्पन्न हुई शिक्षा ग्रहण करता है कि भविष्य में वैसी भूल फिर न करूंगा। इसी प्रकार वह उत्तरोत्तर बढ़ता है व विकाश को प्राप्त होता है।

५५५. गुण व दोष अर्थात् भलाई व बुराई एक ही सिक्के की सीधी और उल्टी दो तरफें हैं यह दोनों सापेक्षक शब्द हैं। अन्धकार और प्रकार के समान वह सापेक्षक हैं। एक का अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व का प्रमाण है। घृणा और असत्य का अस्तित्व प्रेम और सत्य के अस्तित्व की घोषणा करता है।

मृत्यु के पश्चात् तुम्हारे अच्छे या बुरे कर्म ही साथ जावेंगे। वे कर्म ही भविष्य में आने वाले जीवन को निर्णय करते हैं। धर्माभिरुची ही एकमात्र वास्तविक मित्र है। अतः सर्वदा केवल धर्म व सत्यानुकूल कर्म करो।

५५७. जो अपने लिये क्लेश प्रद हो वह व्यवहार दूसरे के साथ कदापि न करे। तुम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें। यही धर्म का सार है।

अभिमानी पंडित लोग अपनी विद्या के बल से शास्त्रों के मथन से केवल छाछ को ही प्राप्त करते हैं और अच्छे नम्र भक्त मक्खन को सर्व शक्तिमान परमेश्वर हमारे पिता बन्धु और उत्पादक हैं। वह पूर्ण सुख और शाश्वतनन्द का स्रोत है। तमाम प्राणी उसके पास ज्ञान प्राप्ति के लिये जाते हैं।

अछूत कौन है

हरीजन पत्र ने कर नाटक के प्रसिद्ध कवि कनक दास की एक कविता का भाष्य अंग्रेजी भाषा में छापा है। उसका अनुवाद अखबार वतन ने उर्दू में किया है जिसकी हिन्दी यह है। मूढ़ अछूतों को दलितों की बस्तियों में क्यों ढूंढता है? क्या तुम अपनी आखें खोल कर नहीं देखते कि वह शहर के अन्दर भी मौजूद है। जो मनुष्य यह चाहता है कि मेरे पास धन के भण्डार हों परंतु उनमें से वह गरीबों और अनाथों को कुछ नहीं देना चाहता वह अछूत है।

जो मनुष्य झूठ बोलता है हर समय अश्लील भाषण से काम लेता है वह अछूत है।

वह दुष्ट जो दुसरों की जान लेता है वह महा अधम अछूत है।

अछूतों को दलितों की गलियों में ढूंढने की आवश्यकता नहीं वे शहर के अन्दर भी मिल सक्ते हैं।

वह मनुष्य जो लेना तो जानता है परंतु देना नहीं जानता वह अछूत है।

वह मनुष्य जो ऊंची कामनाओं का दास बनजाता है अछूत है।

वह मनुष्य अछूत है जो किसी का नमक खाकर उसी की बुराई करता है, इसलिये अछूतों को दलितों की गलियों में ढूंढने की आवश्यकता नहीं वह शहर में भी मिलसक्ते हैं।

वह मनुष्य अछूत है जो प्रतिज्ञा करके तोड़ देता है।

वह मनुष्य जिसमें उदारता नहीं और प्रत्येक कार्य को स्वार्थ से करता है वह अछूत है।

वह मनुष्य जो जानते हुए भी किसी की बुराई को प्रकट नहीं करता अछूत है।

जो मनुष्य परमेश्वर की प्रार्थना नहीं करता वह अछूत है।

अछूत दलितों की गलियों में ही पैदा नहीं होता बल्कि शहर में हर जगह पाया जाता है।

समा लोचना।

तत्व चिन्तामणि—यह 'कल्याण' में प्रकाशित श्री जयदयाल जी गोयन्द का के लेखों के संग्रह का पूरा भाग है। इस पुस्तक में तत्व ज्ञान, भ्रातृधर्म, पतिव्रत धर्म आदि विषयों पर सुन्दर लेख हैं मूल्य ॥=)

श्रीज्ञानेश्वर चरित्र—श्रीज्ञानेश्वर जी महाराज के नाम को कौन नहीं जानता है। ये महाराष्ट्र में भक्ति के आद्य प्रवर्तक हैं। उन्हीं का जीवन चरित्र बड़ी खोज के साथ इस पुस्तक में संग्रह किया गया है। मूल्य ॥)

श्री विष्णु सहस्र नाम—इसमें मूल श्लोक के नंचे श्री शंकराचार्य जी महाराज का संस्कृत में भाष्य है जिसका श्रीस्वामी भोले बाबा जी ने हिन्दी में अनुवाद दिया है। मूल्य ॥=)

नोटः—उपरोक्त तीनों पुस्तकें गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हुई हैं।

भजन

संग्रह कर्ता पं० गौरी शंकर ब्रह्मचारी

बसत इक जमना में काली।
नाथकर लाये बनमाली ॥ टेक ॥
चरावन गौधन को धाये,
चलत प्रभु काली दह आये।
गोप जल पीवें और प्याये,
पियत जल सब ही मुरझाये ॥
पीछे से आये कृष्ण जी, सब को लिया जिवाय।
निर्मल आज करूं पटरानी, चढे कदम तरु जाय ॥
पियत जल जमुना जी हाली ॥ १ ॥
गये जब नागिन के आगे,
नाग तेरा सोवे कै जागे।
लुके क्यों भय किनरो लागे,
जुद्ध को आवें क्यों ना आगे ॥
यों मन में गर्वो घनो, काहूँ जमना बार।
इतनी सुनत हंसत भई नागिन, बुधको नहीं विचार ॥
जगावन भर्ता को चाली ॥ २ ॥
नाग से नागन यों बोली,
ढीट बालक आयो पोली।
लगी जब तिरिया की बोली,
पलक जब कालेने खोली ॥
विष की ज्वाल मुख से चली, चरन उसन वृजराज।
निर्भय होय रोष कर चालो, तन लिपटन के काज ॥
आंट तनु मोहन के घाली ॥ ३ ॥
भयो जब गोकुल उत्पाता,
दुख अति उपजो पितु माता।
संग नहीं बलदाऊ भ्राता,
बिकल वृज बासी जन जाता ॥
जमुना जी के तीरपर, सब मिल कियो बिलाप।
दुखिया जान तात महतारी, देह बढ़ाई आप ॥
नाथ तन काली के डाली ॥ ४ ॥
नाथ कर बाहर को लाये,
सकल वृज दर्शन को आये।
उठे प्रभु आनन्द हो आये,
अमर पन मांहि प्रभु छाये ॥
फन २ नाचे कृष्ण जी बन्शी लीनी हाथ।
जो फन ऊंचो उठत नाग को ताके मारे लात ॥
बजावे गंधर्व दे ताली ॥ ५ ॥
जोड़कर नागन कह पायक,
नाथ तुम दुष्टन भयदायक।
सन्त दीनन के हो सहाक,
नहीं यह आप जुद्ध लायक ॥
तुम भर्ता संसार के, हम जूनन के नाग।
याचों दीन जाति की नारी, बख्शो मेरे सुहाग ॥
नाथ हम शरणागत आली ॥ ६ ॥
दया जब नागन की धारी,
तुरत हंस बोले गिरधारी।
तजूँ मैं सुन करुणा थारी,
बिषा हरी काली की सारी ॥
बिष को जल कैसे रहे हम आवें यहां हमेश।
अब तुम को डर नहिं गरुड़ को, जाओ अपने देश ॥
करो या जमुना को खाली ॥ ७ ॥
पूज हरि काली सुख पायो,
देख तन वैसो ही पायो।
कुटुम्ब ले घर अपने आयो,
लिले रघु वृज जन सुख पायो ॥
फिर दवानल पानकर, वृज को दियो अनन्द।
गंगाधर निर्मल कियो, करी कृपा गोविन्द ॥
गयो भय कृपा जन पाली ॥ ८ ॥

———

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना. वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) वा इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह भावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल डा० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१,
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी	,,
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलबीरसिंह जी	,,
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	,,
चौधरी शिवसहाय जी कौंसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
जमादार कुन्दनलाल नयागांव उर्फ शादतनगर	२५)

सहायक

प्रोफेसर परमानन्द जी इलाहाबाद २०)
बा० बन्दीप्रसाद जी अकाउण्टेन्ट इलाहाबाद २०)
दीवान बहादुर सेठ गोपालदास बल्लभदास, भोपाल १५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली १५)
पं० जगदीशप्रसाद शर्मा एडवोकेट रायबरेली ११)
नायक धनसिंह जी टूमना ७)
श्रीमती शिवानन्दी देवी ५)
जी एडीशनल जज अलीगढ़ । ५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली ५)
बड़िया बाबा, मन्दिर श्री दादी जी खेतड़ी ,,
जमादार दीपचन्द जी ५)
लाला ओंकारमल जी कानपुर ५)
बाबू हीरालाल जी इंकमटेक्स अफसर गुड़गावा ,,
हवलदार ठाकरसिंह मूसेपुर ५)
भूरासिंह शेखुपुरशिकारपुर (घासेड़ा) ५)
भूरसिंह माजरा, अलवर ,,
श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी ५)
बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां ,,
लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,, ,,
बाबू रामस्वरूप गनेश मील दिल्ली ५)
चौधरी बंशगोपाल जी बायरे चेयरमैन करनाल ५)
ला० पन्नालाल मंगूमल जी लखनऊ ५)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	... ...	१
२.	भगवद्भक्ति [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	... ...	२
३.	आध्यात्मिक जीवन (रचयिता बी० एल० सराफ	... ...	८
४.	श्रीमती राधा और श्रीकृष्ण जी (ले० श्री यमुना प्रसाद श्रीवास्तव	... ...	६
५.	हरिदासी (ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी	... ...	१३
६.	शिव (कविता) रचयिता श्रीमती ब्रजकुमारी प्रभाकार	... ...	१७
७.	जनरल बूथ (ले० श्री डब्लू० ओ० फिच एम० ए०	... ...	१८
८.	वैकुण्ठ या साकेत (ले० श्री महावीर प्रसाद जी बजरंगबली श्रीवास्तव	... ...	२१
९.	मनुष्य जीवन का उद्देश्य (ले० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी	... ...	२५
१०.	योग साधन (ले० श्रीस्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	... ...	२७
११.	अछूत कौन है	... ...	३१
१२.	समालोचना	... ...	३१
१३.	भजन (संग्रह कर्ता पं० गौरी शंकर जी ब्रह्मचारी	... ...	३२

REG DNo. .L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।)
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	।)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	।।)
११.	शब्द सार संग्रह	,,	।)
१२.	शब्दसंग्रह	,,	।।)
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहिये।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक सत्यानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।